आत्मिक अनुभव - एक कथा

सत्य घटनाओं पर आधारित एक जीवन परिचय

लेखक

डॉ यतेंद्र शर्मा

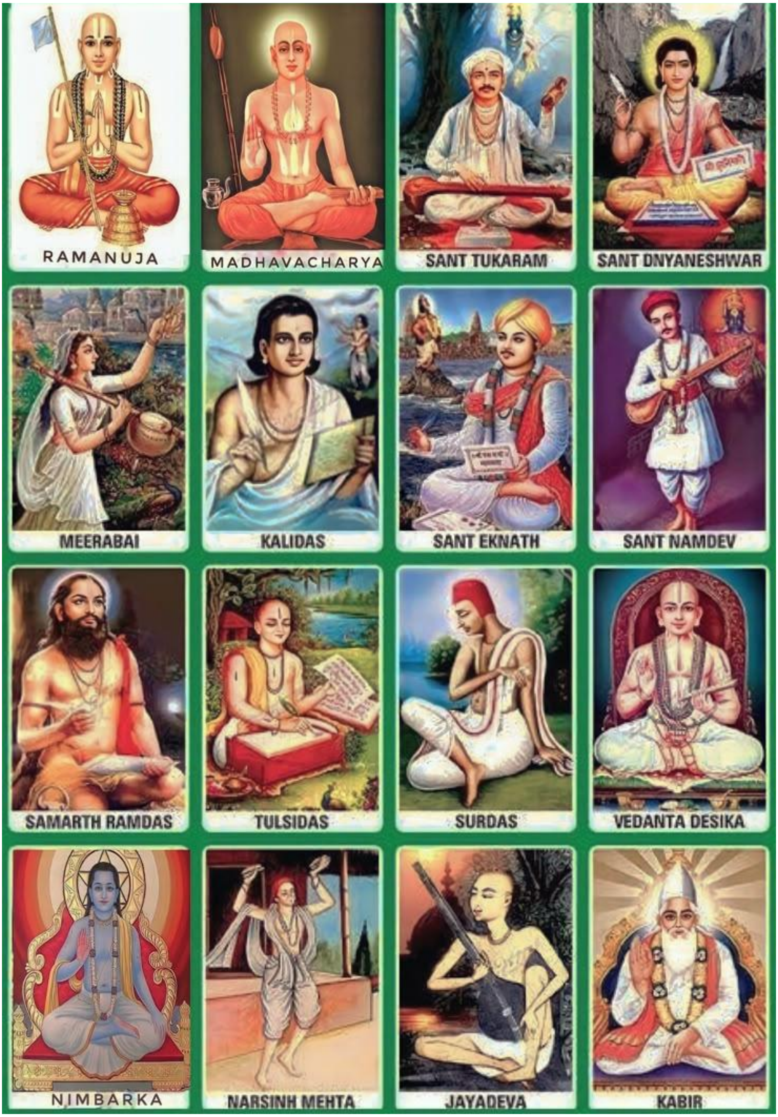
RAMANUJA
MADHAVACHARYA
SANT TUKARAM
SANT DNYANESHWAR
MEERABAI
KALIDAS
SANT EKNATH
SANT NAMDEV
SAMARTH RAMDAS
TULSIDAS
SURDAS
VEDANTA DESIKA
NIMBARKA
NARSINH MEHTA
JAYADEVA
KABIR

आत्मिक अनुभव - एक कथा

सत्य घटनाओं पर आधारित एक जीवन परिचय

लेखक

डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रकाशक

श्री राम कथा संस्थान पर्थ
३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज़,
वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया – ६०२५

वेबसाइट: https://shriramkatha.org
ईमेल: srkperth@outlook.com

ATMIK ANUBHAV – EK KATHA (SATYA GHATNAON PAR ADHARIT EK JEEVAN PARICHAY)
(HINDI)

ISBN: 978-1-7648041-6-5

Author / All rights Reserved

© Author: Dr. Yatendra Sharma

1st Edition: June 2023

E-Book

Published by: Shri Ram Katha Sansthan

35 Mayena Retreat, Hillarys
W.A. 6025, AUSTRALIA
Telephone: +61 8 94011543
Email: srkperth@outlook.com

क्रमिका

अस्वीकरण 6
समर्पण 7
प्रस्तावना 8
प्रारंभता 13
शरण्या माँ 27
दादा जी का स्वर्गवास 33
दादा जी का व्यक्तित्व 37
माँ के दर्शन और आशीर्वाद 52
भावुकपन 60
सूफी मत से परिचय 68
आनन्दमयी माँ का आशीर्वाद 100
विवाह और गुरु दीक्षा 106
हरे कृष्ण समुदाय से परिचय 113
परमहंस ठाकुर श्री राम कृष्ण जी का आशीर्वाद 126
श्री राम कथा संस्थान की स्थापना 138
लेखक: डॉ यतेंद्र शर्मा 148

अस्वीकरण

इस पुस्तक की सामग्री जनहित एवं सामान्य ज्ञान के लिए प्रदान की गई है। हमारा तद्भाव पाठक को कोई परामर्श देने का नहीं है। इस पुस्तक की सामग्री किसी भी तरह से विशिष्ट परामर्श का विकल्प नहीं है। आपको इस ज्ञान के आधार पर कोई भी निर्णय लेने से पहले प्रासंगिक निपुण या विशेषज्ञ का परामर्श प्राप्त कर लेना चाहिए।

इस पुस्तक के लेखक, प्रकाशक और उनका कोई प्रतिनिधि किसी भी विषय में इस पुस्तक से सम्बंधित कोई प्रत्याभूति नहीं लेते। इस पुस्तक का पठन-पाठन-श्रवण पाठक स्वयं के संज्ञान से दायित्व ले कर ही करें।

यद्यपि हमने इस पुस्तक में सटीक ज्ञान देने का पूर्ण प्रयास किया है लेकिन किसी भी प्रकार कोई त्रुटि अथवा अकृता रह गई हो तो उसके लिए लेखक एवं प्रकाशक क्षमा प्रार्थी हैं और इसके परिणाम स्वरूप किसी विधि, सामाजिक, धार्मिक, इत्यादि का दायित्व नहीं लेते।

समर्पण

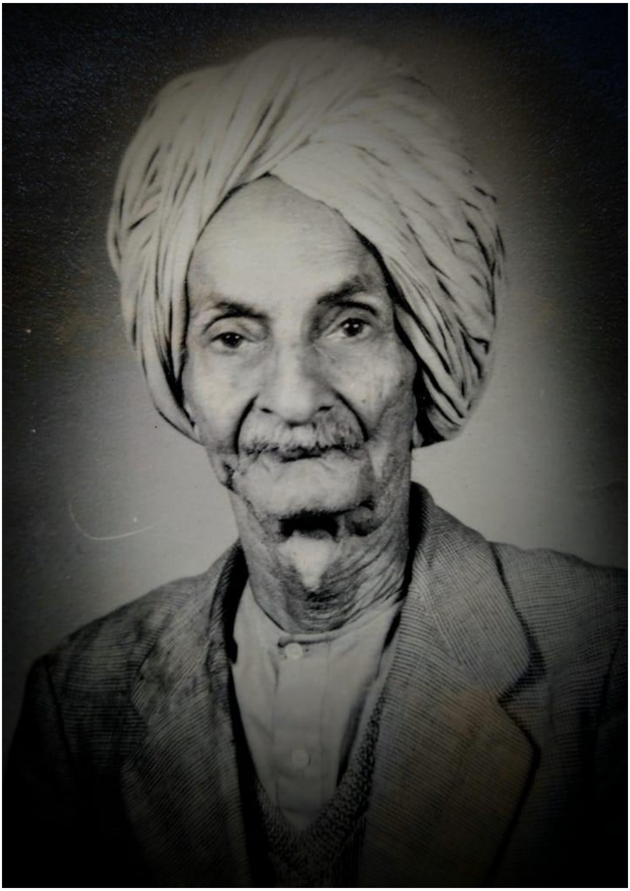

पितामह पूज्यनीय श्री भगवान दास शर्मा जी
के चरणों में सादर समर्पित

प्रस्तावना

दादा जी का कथन, 'जीवन संघर्ष का ही तो बस दूसरा नाम है'; गुरुदेव के वचन, 'जीवन संघर्ष अवश्य है, परन्तु प्रेम और श्रद्धा रूपी कस्तूरी से इसे सुगन्धित करते रहो तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति की ओर सदैव अग्रसित रहो', सदैव यतिन के कानों में गूंजते रहते हैं। लक्ष्य की प्राप्ति? क्या लक्ष्य है यतिन के जीवन का? यतिन जैसे एक साधारण पुरुष के लिए तो बस गृहस्थ जीवन के उत्तरदायित्यों का निर्वाह हो जाए, क्या यह पर्याप्त नहीं? उसमें भी तो हर दम संघर्ष ही लगता है। चारों ओर भ्रष्ट एवं स्वार्थी वातावरण में एक उज्वलित जीवन जीने की आशा का दीप तो जैसे बुझता ही चला जा रहा है। कदम कदम पर संघर्षों को कम करने हेतु आदर्शों से विचलित होने का लुभाव आकर्षित करता रहता है। ऐसे में गुरुदेव महाराज के कथन पर चलना कैसे संभव है? लेकिन पूज्य गुरुदेव महाराज के वचनों का अनुसरण करना भी तो यतिन का परम कर्तव्य है! ऐसे में क्या करे यह असहाय पुरुष? संभवतः महान आत्माओं के प्रवचनों से कुछ प्रेरणा मिले?

महात्माओं के प्रवचन सदैव महान अवतारों एवं भूरत्नों के चरित्र पठन पाठन की ओर अग्रसित करते रहते हैं अथवा योग अभ्यास एवं संकीर्तन में संलग्न रहने को प्रेरित करते रहते हैं। वह श्री मद्भागवद्गीता और उसी प्रकार की अन्य श्रुतिओं का उपदेश देकर आध्यात्मिकता का मार्ग दर्शाने का प्रयास करते हैं। एक कहावत है, 'भूखे पेट ना हो भजन गोपाला'। मानसिक शान्ति न होना भी तो भूखे पेट के बराबर ही है। जब मन शान्ति की भूख में तड़प रहा हो तो यह आध्यात्मिक ज्ञान किस काम का? स्वामी विवेकानन्द जी ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है, 'हे मनुष्य, आत्मिका प्राप्त करने के लिए हृदय की शान्ति अत्यंत आवश्यक है। अतः आध्यात्मिकता खोजने से पहले मन की शान्ति खोज। मन की शान्ति जभी मिलेगी जब तेरे अंदर की समस्त इच्छा प्रवर्तियाँ शांत हो जाएंगी। इच्छा प्रवर्तीओं को शांत करने के लिए तुझे उनकी पूर्ति करनी होगी।' अब पांचो उंगलियां एक सी तो नहीं होतीं। इसी कारण इन महान आत्मा के इस कथन का भी अर्थ भांति भांति के लोग अपने अपने सोच और विचारों के अनुकूल ही लगाएंगे। लेकिन यतिन जैसे साधारण पुरुष के लिए तो इस कथन का एक ही तात्पर्य है। इस जीवन को जीने के लिए संघर्ष करता जा, और बस केवल और केवल अपने दायित्वों को निभाते हुए जितना हो सके धर्म पूर्वक कार्य करता जा। निष्कर्ष अवश्य तेरे हाथ में नहीं है, लेकिन हे साधारण पुरुष, जब तक तू कार्य नहीं करेगा,

तेरी इच्छा प्रवर्तियाँ कैसे शांत होंगी? तू अपने स्वप्न कैसे साकार करेगा? अगर स्वप्न साकार नहीं हुए तो तुझे शान्ति कैसे प्राप्त होगी? अगर शान्ति प्राप्त नहीं हुई तो आध्यात्मिकता की ओर कैसे बढ़ पाएगा? आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति नहीं हुआ तो तेरा जन्म कैसे सार्थक होगा?

कर्म करते रहना और वह भी निष्कर्ष इच्छा रहित, एक बड़ी समस्या है इस प्रकार से कार्य करने में। अब हम हैं तो साधारण पुरुष ही, कोई महान आत्मा एवं त्रिकालदर्शी तो हैं नहीं। हर कार्य करने की पृष्ठ भूमि में चाह अथवा अचाह में सफल होने की अभिलाषा तो रहती ही है। अब यह कैसे सुनिश्चित हो कि हमें सफलता ही मिलेगी? मनुष्य हैं, अतः कार्य करते हुए त्रुटियाँ होना भी स्वाभाविक हैं। त्रुटियाँ अवश्य ही असफलता की ओर धकेल सकती हैं। यतिन के साथ तो पता नहीं क्यों ऐसा ही होता है। बड़े प्रयत्न से गुरुदेव के वचनों को हृदय में रखकर, 'कार्य करते समय कहीं मर्यादा भंग न हो', यतिन इसी प्रकार कार्य करने का यत्न करता है। लेकिन फिर भी संभवतः सफलता देवी तो उससे रुष्ट ही रहतीं हैं। हर बार असफलता ही क्यों हाथ लगती है? बार बार असफलता शनैः शनैः निराशा की ओर ले जाती है। निराशा से आत्मसम्मान एवं आत्म निर्भरता को गहरी चोट लगती है। तब एक स्वाभिमान एवं ऊर्जा से पूर्ण मनुष्य जो आंधी और झंझावात में भी सीना तानकर संघर्षरत रहा, वह अब एक छोटी सी तीव्र वायु से भी विचलित हो जाता है। उसका सामर्थ्य थक जाता है। भगवान् से विश्वास उठने लगता है। हे प्रभु, मैं ही क्यूँ? ऐसा प्रतीत होने लगता है कि संभवतः यह भगवान् नाम कुछ मनुष्यों ने जिन्हें हमारे तथा-कथित धर्म ग्रन्थ ऋषि मुनि सम्बोधित करते हैं, उनके मस्तिष्क की ही उपज है। अगर भगवान् होते तो क्या अपने इस मर्यादा में चलने वाले भक्त पर इतनी असफलताओं का बोझ डालते? हर ओर से निराश होकर एवं अपनी असफलताओं से समाज का व्यंग पुरुष बनकर अब वह अपने को पूर्ण निःसहाय समझते हुए कर्म करने से डरने लगता है।

कुछ ऐसा ही यतिन के साथ घटित हुआ। निरंतर असफलताओं के पश्चात निराशा में डूबा हुआ, संभवतः संन्यास लेकर इस संसार को त्यागने के विचारों में लीन, आत्म विमोचन में संलग्न वह अपने बिस्तर पर लेटा ही था कि झपकी आ गई। यह क्या? भूख प्यास से तड़पते हुए उसने अपने आपको एक निर्जन रेगिस्तान में पाया। दोपहर के तपते हुए सूर्य देव, कोई वृक्ष की छाया भी समीप नहीं, प्यास बुझाने का कोई जल साधन भी नहीं, कोई मनुष्य तो दूर पक्षी भी दिखाई नहीं देता, वह बुरी तरह घबरा

जाता है। किस से सहायता मांगे? हे भगवान्, क्या उसके भाग्य में ऐसी दर्दनाक मौत लिखी है? अपना मरण समीप समझ यतिन की आँखों के सामने सभी घनिष्ठ परिवारगण एवं मित्रगण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। 'हे प्रभु, मेरा जीवन व्यर्थ ही गया! मैं अपने परिवार, मित्र अथवा किसी के भी काम न आ सका। क्षमा करो प्रभु, बस अब और अधिक न तड़पाओ। अपनी शरण में ले मुझे जीवन मुक्ति दो।' बेहोश होकर गिर पड़ता है यतिन। तभी, यह क्या? गुरुदेव! नेत्र खोल गुरुदेव को देखने और पहचानने का प्रयत्न करते हुए उन्हें प्रणाम करने का प्रयास करता है। गुरुदेव के मधुर शब्द कानों में सुनाई देने लगते हैं, 'वत्स, थोड़ा और साहस कर। क्या तुझे समीप मंदिर की घंटियाँ नहीं सुनाई दे रहीं? समीप ही देवी माँ का मंदिर है। सायंकाल प्रारम्भ हो चुका है, और सूर्य देव की तपन भी अब कम हो गई है।'

गुरुदेव की वाणी सुन न जाने कहाँ से यतिन के शरीर में स्फूर्ति आ गई। एक नई ऊर्जा का संचालन हुआ। बहुत साहस कर वह शनैः शनैः उस ओर घिसटने लगा जहां से घण्टीओं का स्वर सुनाई दे रहा था। कुछ ही क्षणों में वह ध्वनि के समीप पहुँच गया। रेगिस्तान के मध्य में माँ भवानी का मंदिर! कुछ समझ में नहीं आ रहा था। सायंकालीन माँ स्तुति प्रारम्भ हो चुकी थी। किसी प्रकार अपने को सम्हालते हुए यतिन मंदिर के द्वार तक पहुंच गया।

जय जय माँ अंबे भवानी, पूजै नर असुर देव जगजानी।
जय जय माँ अंबे भवानी.................... ।

कष्ट घोर ना सुमति भवानी, राह दिखाओ जगदम्बे रानी।
जय जय माँ अंबे भवानी................. ।
चतुर चाल चलत चर्वाकनी, बुद्धी मूढ़ ना कुछ समझानी।
जय जय माँ अंबे भवानी................. ।

शिशु बिन माँ दुग्ध बिलखानी, तड़पत मीन जस बिन पानी।
जय जय माँ अंबे भवानी................. ।

निःशूल समझ संसा अज्ञानी, कूद पड़ा नदी भंवर ना जानी।
जय जय माँ अंबे भवानी................. ।

भूल भुल्लै भू भ्रमित न जानी, मृगमरीचिका नहीं पहिचानी ।
जय जय माँ अंबे भवानी……………. ।

ग्यानचक्षु अब खोल शिवानी, छोड़ सिडी शरणागत आनी ।
जय जय माँ अंबे भवानी……………. ।

स्तुति समाप्त होने के पश्चात प्रसाद वितरण प्रारम्भ हुआ। भूख और प्यास से विचलित मनुष्य को तो जैसे अमृत ही मिल गया हो। प्रसाद वितरण पश्चात धीरे धीरे सभी एकत्रित लोग अपने अपने वाहनों से वहां से जाने लगे। साहस कर एक भद्र पुरुष से यतिन ने पूछा, 'भैया, क्या यहां समीप कोई बस्ती होगी? 'नहीं, यहां से ५० कोस की दूरी तक कोई बस्ती नहीं है। तुम पहली बार आए हो क्या? क्या तुम अकेले हो? यहां तुम्हारा आना कैसे हुआ? क्या जानते नहीं कि यह मंदिर वर्ष में केवल एक बार माँ भवानी की पूजा के लिए खुलता है?' उन महानुभाव ने तो जैसे प्रश्नों की झड़ी ही लगा दी।

यतिन का शून्य मुख देख संभवतः उन्हें अपने प्रश्नों का स्वयं ही उत्तर मिल गया। 'शीघ्रता करो। मेरी कार में एक व्यक्ति का स्थान है। मैं यहां के समीपतम नगर में रहता हूँ। वहीं तुम्हें छोड़ दूंगा', दयाकर उन महानुभाव ने यतिन से बड़ी ही आधिकारिक वाणी में कहा। यतिन चुपचाप उनके वाहन में बैठ गया।

अनायास ही यतिन की निद्रा भंग हो गई। अरे, वह तो अपने बिस्तर पर ही पड़ा है। कहाँ रेगिस्तान? कहाँ माँ भवानी का मंदिर? कहाँ गुरुदेव? कुछ भी तो नहीं!

रेगिस्तान की तड़प, गुरुदेव का आगमन, माँ भवानी का मंदिर, धीरे धीरे यतिन को इस स्वप्न की एक एक घटना याद आने लगी। 'निराश मत हो वत्स, क्या तुझे घण्टीओं की ध्वनि नहीं सुनाई दे रही'। जैसे गुरुदेव कह रहे हों, ‘हे पुत्र, सुरंग के उस पार प्रकाश है। बस साहस ना छोड़।‘

इस स्वप्न ने यतिन के जीवन में एक नई स्फूर्ति भर दी। हे पुरुष, कार्य करता जा, कभी न कभी तो सफलता अवश्य ही प्राप्त होगी। सफलता नहीं भी मिली तो प्रभु की इच्छा। अवश्य ही यतिन को कोई पाठ सिखलाने के लिए प्रभु ने यह रचना रचित की

होगी, और उन्हीं की इच्छा से उसको सफलता नहीं मिली। बस ऐसा मन में विचार ला उनके प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हो गया यतिन।

यह कहानी एक ऐसे ही पुरुष की है। एक छोटे से गाँव में जन्मे इस साधारण पुरुष ने कुछ सपने संजोए। सपनों की पूर्ति के लिए अथक प्रयास किए। भाग्य ने कितनी ही ठोकरें लगाईं। अथक प्रयास एवं घोर परिश्रम के पश्चात भी अधिकतर समय केवल और केवल असफलता ही हाथ लगी। एक ऐसे महान भारत देश में जहां इस कलि-युग में केवल पैसा ही भगवान् और बड़े प्रतिष्ठित व्यक्तिओं की अनुशंसा के बिना जीना दूभर हो, इस पुरुष ने अपने आपको गुरुदेव के कथन, 'मर्यादा में रहकर कार्य करते जाओ', को सार्थक करने का प्रयास किया। यह तो नहीं कहा जा सकता कि वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो पाया अथवा नहीं, परन्तु ऐसा अवश्य लगा कि जीवन के चतुर्थ चरण में जीवन से पूर्ण संतुष्ट हो उसने हृदय की शांति प्राप्त की।

यह कथा कोई कपोल कल्पित नहीं, परन्तु जीवन में सत्य पथ पर चलते हुए शांति प्राप्ति का प्रयास करने वाले एक साधारण पुरुष के सत्य जीवन वृत्त पर आधारित है। जब एक साधारण व्यक्ति सभी प्रतिकूल परिस्थिओं में अथक प्रयास एवं घोर परिश्रम के पश्चात असफलताओं से जूझते हुए प्रकृति को चुनौती देते हुए शांति पथ की ओर अग्रसर हो सकता है, तो हम और आप क्यों नहीं?

शुभ कामनाओं के साथ,

आपका अपना, प्रभु के चरणों में अर्पित,

डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रारंभता

विक्रम सम्वत २०१० (सन १९५३) का श्रावण मास प्रारम्भ हो चुका है। भीनी भीनी बरसात, मिट्टी की सोंधी मंद सुगन्धित पवन, वृक्षों पर पड़े हुए झूले, लहलहाते हुए हरित खेत, न जाने कितने कामदेव को भी लुभाने वाले दृश्य प्रत्येक नर नारी के हृदय में इस ऋतु में प्रेम का बीजारोपण कर देते हैं। कविओं ने इस मास की अद्भुत सुंदरता के बारे में अनेक काव्यों की रचना की है। यतिन ने भी एक छोटी सी रचना इस मास की सुंदरता को चित्रित करते हुई लिखी थी।

ग्रीष्म ऋतु की तप्ती धरती शीतल हो रही है ।
हे मेघ तेरे जल से धरा प्रफ्फुलित हो रही है ।।
भूमि से आती मिट्टी सौंध हृदय लुभा रही है ।
नभ में इंद्रधनुष छटा आकर्षित कर रही है ।।
मयूर करे नृत्य और कोयल गीत गा रही है ।
धन्य हे श्रावण हर ओर हरियाली छा रही है ।।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गांव सुरजावली में तो इस श्रावण मास में जैसे इंद्र देव कहर ढा रहे हैं। कुछ दिनों से मूसलाधार बरसात ने सामान्य जीवन को बुरी तरह से अस्त व्यस्त कर दिया है। इस छोटे से गांव में सभी अधिकतर निर्धन ग्रामवासियों की एक ही चिंता है कि कहीं उनके मिट्टी और छप्पर से बने घर इस वर्षा में न ढह जाएं।

पुरुष जब हर प्रकार से हताश हो जाता है तो उसके हृदय में भगवान् के प्रति अत्यंत आस्था जाग जाती है। आज यही दृश्य घर घर में सुरजावली में देखने को मिल रहा है। अपने अपने धर्म और श्रद्धा के अनुसार सभी उस शक्तिशाली की प्रार्थना में लगे हुए हैं जहां से उन्हें आशा है कि उनकी विनती अवश्य सुनी जाएगी। 'हे इंद्रदेव, शांति, शांति, शांति। अब बस भी कीजिए भगवन। हे मेरे कुलदेवता, अगर इस बार मेरा घर सही सलामत रहा तो मैं शीघ्र ही श्री सत्यनारायण कथा का पाठ कराऊंगा।' 'या अल्लाह, हे परवर-दिगारे-आलम, हमारी मदद करो। हे अजमेर के ख़्वाजा शरीफ, अवश्य ही हम आपकी दरगाह में चादर चढ़ाने आएंगे।' न जाने कितनी ही ऐसी मनौतियां सभी हिन्दू, मुसलमान और अन्य धर्म के श्रद्धालु अपने अपने ईश्वर से हृदय

में मना रहें हैं। आज श्रावण शुक्लपक्ष की नवमी तिथि है। मूसलाधार बारिश होते हुए लगातार पांचवां दिवस है। गांव की कच्ची गलीओं में एकत्रित कीचड़ ने सभी आवागमन के साधनों पर ईश्वरीय प्रतिबन्ध लगा रखा है। सभी व्यथित गृहस्थ शांति से अपने अपने घर बैठे इस प्रकृति के प्रकोप को असहाय भाव से देख रहें हैं। एक ब्राह्मण परिवार के गृह में अवश्य कुछ अधिक हलचल दिखाई दे रही है। घर की पुत्रवधू सरब प्रसव की पीड़ा से बेचैन है। गांव के एक मात्र वैद्य जी, जो परिवार के घनिष्ठ मित्र भी हैं, सभी उपायों में लगे हुए हैं कि किसी प्रकार पुत्रवधू की पीड़ा समाप्त हो और बच्चे का आगमन हो। बाहर बैठक में सभी पुरुष, दादा, पिता एवं अन्य कुछ परिवारगण एवं मित्रगण, किसी शुभ समाचार की बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहे हैं। तभी प्रफ्फुलित चेहरे के साथ एक वृद्ध महिला का बैठक में आगमन होता है। 'बौहरे जी, बधाई हो, पौत्र हुआ है। बच्चा और माँ दोनों स्वस्थ हैं।' दादा जी के मुख से निकला, 'यतिन, तेरा स्वागत है।'

यतिन के दादा जी गांव के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति और किसान थे। किसी समय वह इस गांव के साथ साथ तीन और गांवों के भी ज़मींदार हुआ करते थे। भारत की अंग्रेज़ों से स्वतन्त्रता के पश्चात भारत सरकार ने ज़मींदारी प्रथा समाप्त कर सरकारी राजस्व प्रथा का प्रारम्भ कर दिया था। अनगिनत बेईमान और लालची ज़मींदारों ने तब निर्धन किसानों को राजस्व न देने के आरोप में उनसे उनकी ज़मीनें हड़प लीं और स्वयं बड़े किसान बन गए। लेकिन दादा जी एक भगवद्भक्त दयालु ज़मींदार थे। उन्होंने ऐसा करना नर्क प्राप्ति का साधन बतलाया। किसी भी अपने किसान की ज़मीन कभी नहीं हड़पी। अतः सीमित ज़मीन के ही मालिक रह गए थे, जो उनकी अपनी स्वयं की खरीदी हुई थी। यह ज़मीन संभवतः घर के खान-पान व्यवस्था के लिए तो अवश्य ही पर्याप्त थी, परन्तु किसी अन्य पारिवारिक बोझ वहन करने के लिए अपर्याप्त थी। उनके दो पुत्र थे, बड़े पुत्र सुरेन - यतिन के पिता, और छोटे पुत्र महेन। सुरेन पिता के साथ ज़मींदारी संभालने के कारण उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाए थे, परन्तु महेन ने स्नाकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की और एक अन्य प्रांत में शिक्षक का पद स्वीकार कर वहीं अपने परिवार के साथ रहते थे।

ज़मींदारी उन्मूलन के पश्चात यतिन के पिता गांव के एक छोटे से शाखा डाक खाने का प्रबंध सम्हालते थे। आय बड़ी ही सीमित थी। अब एक पुत्री और दो पुत्र के पिता बन चुके थे। परिवार का बोझ उठाने के लिए उन्होंने भी अच्छी नौकरी करने की

ठानी। लेकिन सीमित शिक्षा वाले इन पुरुष को भला कैसे अच्छी नौकरी मिलती? बड़े प्रयास किए तब किसी तरह डाक विभाग में ही एक छोटी सी कुछ अधिक आय वाली नौकरी उन्हें मिल गई जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार की और छोड़ दिया पितृगृह। उनका स्वयं का परिवार कभी उनके साथ उनके नियुक्ति वाले स्थान पर रहता और कभी पितृग्रह। इसी प्रकार समय बीतता चला गया। अब वह एक और पुत्री ब्रज के पिता बन चुके थे।

यतिन संभवतः तीन अथवा चार वर्ष का रहा होगा तब उसका भव्य मुंडन समारोह हुआ। उस समय पिता की नियुक्ति गंगा तट पर स्थित एक लघु नगर राजघाट-विहारघाट में थी। क्या भव्य समारोह रचाया था पिता ने! सभी पास और दूर के अनगिनत रिश्तेदारों से घर भर गया था। यतिन को याद है कि उसके दादा जी भी इस समारोह में भाग लेने आए थे।

इस मुंडन की धुंधली स्मृति आज भी यतिन के मष्तिष्क में घूमती रहती है। माँ सरब ने उसे सभी रिश्तेदारों के समक्ष एक टोकरी में बिठाया था और सबसे विनती की थी कि वह इस टोकरी को कुछ इंच अपनी ओर खींचते हुए ईश्वर से उसके स्वास्थ्य और प्रगति की कामना करें, और सभी ने ऐसा किया भी। बड़ा अच्छा लगा था यतिन को। एक झूले में झूलने जैसा अनुभव हुआ था उसको। इसके पश्चात् पंडित जी ने मन्त्र उच्चारणों के साथ कुछ यज्ञ किया था। यज्ञ से निकलने वाले धुएं से यतिन की आँखे लाल हो गए थीं, और वह रोया भी बहुत था। लेकिन उसके रोने की परवाह न करते हुए यज्ञ चलता रहा था। तब पंडित जी ने उसकी लटों के एक गुच्छे को कैंची से काटा था। तत्पश्चात नाई जी ने उसके समस्त सर के बाल उस्तरे से काट दिए थे। बड़ा दर्द हुआ था यतिन को। वह रोता रहा और नाई जी उसके बाल काटे रहे। बड़ी जलन हो रही थी उसको सर पर। तब माँ ने चन्दन और हल्दी का लेप लगाया था सर पर। इस से यतिन को सर पर कुछ शीतलता का अनुभव हुआ और तब वह सो गया था।

उस मुंडन की रात्रि को यतिन ने हठ पकड़ ली कि वह दादा जी के साथ ही सोयेगा। वह दादा जी के पास चला भी गया। उसे पता था कि दादा जी बड़ी मधुर एवं हृदय रोचक कथा सुनाते हैं। उन दिनों आजकल की तरह कोई दूर-दर्शन अथवा इसी प्रकार के अन्य मनोरंजन के साधन तो थे नहीं, बड़े बूढ़ों की लोक कथाएं, गृह संगीत इत्यादि ही मनोरंजन के साधन हुआ करते थे।

'दादा जी, रात्रि को मैं जब सुसु के लिए उठता हूँ तो मुझे शौचालय जाने में बहुत डर लगता है। माँ तो गहरी नींद में सोई होती है, जगाने पर भी नहीं उठती। मैं क्या करूँ दादा जी जो मुझे डर न लगे? वह पास के घर का पप्पू है न दादा जी, वह कहता है रात में भूत आते हैं, और बच्चों को उठा ले जाते हैं', बड़े ही भोलेपन से छोटे से यतिन ने दादा जी से प्रश्न पूछा।

'अरे, यह पप्पू तो बिलकुल ही पागल लगता है। भूत जैसी कोई वस्तु नहीं होती। तुम तो बड़े बहादुर बच्चे हो, ऐसी छोटी बातों से डर गए! अगर माँ गहरी नींद में सोई हुई है तो उसको बिलकुल नहीं जगाओ। बेचारी दिन भर कितना काम करती है। सुबह ४ बजे से रात्रि के ८ बजे तक बस एक पांव पर ही घूमती रहती है। बस, कन्हैया को पुकार लिया करो। तुम्हारी पुकार सुनकर कन्हैया तुरंत आ जाएगा और तुम्हारे साथ शौचालय जाएगा। वह तुम्हें दिखाई तो नहीं देगा, पर तुम्हारे साथ ही होगा।' पुचकारते हुए बड़े मधुर और प्रिय शब्दों में बोले दादा जी।

'कन्हैया! यह नाम तो कुछ सुना सा लगता है, दादा जी। हाँ याद आया, माँ ने जो घर के कोने में छोटा सा मंदिर बना रखा है, उसमें एक चित्र है जिसमें कोई पुरुष बांसुरी बजा रहा है। क्या इसी कन्हैया की बात कर रहें हैं दादा जी?' बोला यतिन।

'हाँ, हाँ, वही कन्हैया', सहज ही बोले दादा जी।

'लेकिन वह तो मात्र एक चित्र है, कोई जीवित पुरुष थोड़े ही है? आप भी कैसी बात करते हैं दादा जी?' बड़े भोलेपन से फिर यतिन ने प्रश्न किया।

'वह एक चित्र अवश्य है पुत्र, लेकिन उसे केवल एक चित्र ही नहीं समझो। यह चित्र भगवान् का रूप है। भगवान् तो हर वस्तु में, हर कण में, हर अवस्था में, हर स्थान में सदैव उपस्थित रहते हैं। जभी भी उन्हें प्रेम से पुकारा जाता है, वह तुरंत उपस्थित हो जाते हैं, और सहायता करते हैं। आज मैं तुम्हें एक ऐसी ही कथा सुनाऊँगा जब तुम्हारी ही तरह एक छोटे बालक ने भयभीत होकर प्रेम से उन्हें पुकारा और वह तुरंत उसके डर एवं दुःख दूर करने साक्षात प्रगट हुए,' बोले दादा जी।

दादा जी ने कथा प्रारम्भ की।

उस बालक का नाम गोविन्द था। गोविन्द एक अत्यंत निर्धन अनपढ़ विधवा माँ का पुत्र था। उसके पिता की कुछ वर्ष पूर्व ही एक महामारी में मृत्यु हो चुकी थी। बेचारी विधवा माँ किसी प्रकार दूसरे घरों में बर्तन मांज कर और अन्य इसी प्रकार के छोटे मोटे कार्य कर किसी प्रकार अपना और अपने इस छोटे बच्चे का निर्वाह करती थी। जब गोविन्द पांच वर्ष का हो गया तो उसकी माँ के हृदय में उसे शिक्षा दिलाने का विचार आया। लेकिन उसके छोटे से गाँव में तो कोई विद्यालय था ही नहीं। उसके गाँव से कोई तीन मील की दूरी पर एक अन्य गाँव में विद्यालय अवश्य था। माँ बड़े साहस के साथ उस पुत्र को लेकर इस दूसरे गाँव के विद्यालय में गई, और प्रधान अध्यापक से विनती की कि वह इस बच्चे को अपने विद्यालय में प्रवेश दें। उसकी विनम्रता से प्रधान अध्यापक अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने गोविन्द को अपने विद्यालय में प्रवेश दे दिया। अब गोविन्द प्रति दिन सुबह उठता, नित्य कर्म करने के पश्चात नहा धो कर माँ के द्वारा पकाया हुआ रूखा सूखा भोजन एक पोटली में बाँध कर विद्यालय की ओर चल पड़ता। उसके गाँव और इस विद्यालय के गाँव की दूरी उस छोटे से बच्चे के लिए अधिक अवश्य थी, लेकिन उसे दूरी से कोई अंतर नहीं पड़ता था। उसे पैदल चलने की तो जैसे आदत ही थी। इन दोनों गांवों के बीच में एक अत्यंत घना जंगल बसता था। उस जंगल में प्रवेश करते अच्छे अच्छे वयस्कों की आत्मा काँप जाती थी, फिर वह तो केवल पांच वर्ष का एक नन्हा सा बच्चा ही था।

आकाश को चूमते हुए बड़े बड़े देवदार के वृक्ष, चारों ओर झाड़ियाँ, मध्यान्ह के समय भी जहां प्रकाश नहीं आता हो, इस दृश्य ने इस घने जंगल की भयानकता अत्यंत बढ़ा दी थी। सूखे धरा पर गिरे पत्तों की मर्मर ध्वनि और पशु-पक्षियों की आवाज के अतिरिक्त वहां कुछ भी और सुनाई नहीं पड़ता था। जैसे ही गोविन्द इस जंगल में प्रवेश करता था तो उसे लगता था जैसे कि वृक्ष काँप रहे हैं; चिड़ियाएं अपने अपने घोंसले में बैठी भय से रुदन कर रहीं है; वृक्षों से टूटी सूखी टहनियां एवं सूखे पत्ते पगडंडी पर उसके पैर पड़ते ही चिरमिरा कर हृदय भेदी ध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं। घबरा जाता था, नन्हा गोविन्द। उसे यह कुछ मील की यात्रा कभी न समाप्त होने वाली यात्रा लगती थी। सहमा हुआ गोविन्द थोड़ी देर के लिए तब रुक जाता था। उसे ऐसा अनुमान होता था कि बड़े बड़े लम्बे वृक्ष अपनी भयावही सायों से उसे डरा रहे हैं। तब एकदम शांति छा जाती थी। थोड़ी देर के लिए पक्षी अथवा वायु प्रवेग की कोई ध्वनि सुनाई नहीं देती थी। तब शीघ्रता से दौड़ने लगता था गोविन्द। विद्यालय पहुँच ही उसके शरीर में श्वास आती थी।

गोविन्द के लिए इस डर को सहन करना अत्यंत कठिन हो गया था। तब उसने अपनी माँ से अपने हृदय की बात बताई और विनती की कि माँ प्रतिदिन उसे विद्यालय छोड़ने एवं विद्यालय से उसे लेने उसके साथ रहे।

उसकी निर्धन माँ किसी प्रकार प्रतिदिन अन्य परिवारों में कार्य कर अपना और बच्चे का जीवन निर्वाह करती थी। उसके लिए यह कैसे संभव था कि वह प्रतिदिन अपने बच्चे को विद्यालय छोड़ने एवं वहां से लेने जाए? तभी उसके मष्तिष्क में एक विचार कौंधा।

‘गोविन्द, मेरे पुत्र, तुम नहीं जानते कि तुम्हारे एक बड़ा भाई भी है। उसका नाम गोपाल है। वह मुझे कुछ वर्ष पूर्व किन्हीं कारणों से छोड़ कर चला गया था। वह इस जंगल के समीप ही रहता है। यद्यपि तुम उसको नहीं जानते, पर वह तुम्हें अच्छी तरह से जानता है। अगली बार जभी भी तुम्हें डर लगे तो ऊँचे स्वर में उसे पुकारना, 'गोपाल, गोपाल, मेरे भैया, मुझे डर लग रहा है। मुझे विद्यालय तक छोड़ दो ना?' मुझे पूरा विश्वास है कि वह तुम्हें विद्यालय तक छोड़ने और विद्यालय से लाने अवश्य आएगा।'

पांच वर्ष के अबोध बालक ने माँ की बातों को सत्य ही समझ लिया। विचार करता रहा कि मेरी माँ तो बड़े ही मधुर और शील स्वभाव की है। ऐसा क्या हुआ कि मेरा भाई मेरी इतनी अच्छी माँ को छोड़ कर चला गया? फिर सोचा, मैं अभी बहुत छोटा हूँ। इन बड़े लोगों की बातों को समझने की ना तो मुझ में सामर्थ्य है और ना ही बुद्धि। होगा कोई कारण, मुझे इससे क्या? कल सुबह मैं अपने भाई को अवश्य ही पुकारूंगा। जैसा माँ ने कहा कि वह अवश्य ही मेरी मदद करने आएँगे। यही सोचते सोचते गोविन्द सो गया।

आज वह सुबह बहुत शीघ्र ही उठ गया। माँ की रात की बातें रह रह कर उसके कानों में गूंज़ रही थीं। शीघ्र नित्य क्रिया कर, स्नान आदि से निवृत होकर विद्यालय जाने के लिए तत्पर हो गया। बड़ा ही उत्साहित था गोविन्द आज। आज उसे उसके बड़े भैया जो मिलेंगे।

वन में प्रवेश करने से पहले ही उच्च स्वरों में पुकारने लगा, 'ओ गोपाल भैया, ओ गोपाल भैया, जानता हूं कि किन्ही कारणों से तुम माँ से क्रोधित हो, पर मेरा तो कोई

दोष नहीं? तुमने मुझे क्यों भुला दिया? मुझे तो आज से पहले यह पता ही नहीं था कि मेरे एक बड़ा भाई भी है। मैंने तो रुष्टता की ऐसी कोई बात नहीं कही, फिर तुम मुझ से रुष्ट क्यों हो? अगर अनजाने में मुझ से आपके प्रति कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करो। माँ सदैव कहती है, 'क्षमा बड़न को चाहिए छोटन को उत्पात'। मैं तो केवल पांच वर्ष का बच्चा हूँ। इस भयानक जंगल को पार कर विद्यालय जाने में मुझे बहुत डर लगता है भैया। कृपया मुझे विद्यालय तक छोड़ दो ना? जब तक आप नहीं आ जाओगे, मैं विद्यालय नहीं जाऊँगा।' यह कहकर वहीं पगडंडी पर बैठ गया गोविंद।

शुद्ध ह्रदय से अबोध बच्चे की पुकार जब गोपाल ने सुनीं, तो करुणानिधान गोपाल बांसुरी बजाते हुए ग्वाला के रूप में इस बच्चे के समक्ष तुरंत उपस्थित हो गए। 'हे मेरे प्रिय लघु भ्राता, डरो मत। माँ ने अवश्य ही तुमसे झूंठ बोला होगा कि मैं उनसे रुष्ट हूँ। मैं उनसे अथवा तुमसे बिलकुल रुष्ट अथवा क्रोधित नहीं हूँ। मुझे गौ माताओं को चराने जाना पड़ता है दूसरे गॉव में, जो यहां से थोड़ी दूर पर है। प्रतिदिन के आवागमन की असुविधा को ध्यान में रखते हुए मैंने गौ माताओं के समीप ही अपना निवास बना लिया है। तुमने मुझे पुकारा, और देखो मैं आ गया। मैं अवश्य ही तुम्हें प्रतिदिन तुम्हारे विद्यालय तक छोडूंगा। लौटते समय इसी प्रकार तुम मुझे पुकारना, और तब भी मैं आ जाऊँगा। अच्छा एक बात है। हम तुम भाई ही नहीं, मित्र भी हैं ना? हम दोनों भाईओं की बातें दोनों भाईओं तक ही गुप्त रहनी चाहिए। तुम माँ से अथवा किसी से नहीं बताना कि तुम्हारी पुकार से मैं तुम्हें प्रतिदिन विद्यालय छोड़ने और वहां से लेने आता हूँ। अगर माँ पूछें तो कह देना, बस माँ अब मुझे डर नहीं लगता।'

अबोध बच्चे ने सोचा, 'बड़े भाई हैं। कोई न कोई तो कारण होगा वह यह बात माँ अथवा किसी को नहीं बताना चाहते। मुझे इससे क्या? भैया कहते हैं कि नहीं बताओ, तो नहीं बताऊंगा।'

दोनों भ्राता इसी प्रकार बातें करते करते जंगल में प्रवेश कर गए। गोपाल फिर बोले, ' भ्राता गोविन्द, केवल अपनी दृष्टि मेरे पर ही रखो। वृक्षों, झाड़ीओं, पशु, पक्षिओं इत्यादि की ओर बिलकुल नहीं देखो। मेरा हाथ पकड़, मेरी ओर देखते हुए, बस मेरी बांसुरी की धुन सुनो। तुम्हें डर बिलकुल नहीं लगेगा।' और वही किया गोविन्द ने। बांसुरी की धुन ने उसे मोहित कर दिया। गोपाल भैया का हाथ पकड़ा और नेत्र मूँद लिए। उसे तो पता ही नहीं लगा कि कब जंगल के दूसरी पार पहुँच विद्यालय के

समीप पहुँच गया। उसका ध्यान तब टूटा जब गोपाल ने बांसुरी बजाना बंद कर गोविन्द से कहा, 'भ्राता, वह सामने रहा तुम्हारा विद्यालय। अब जाओ। लौटते समय मुझे फिर पुकार लेना।'

विद्यालय बंद होने पर गोविन्द घर लौटते हुए जैसे ही जंगल के समीप पहुंचा, फिर से उसने अपने गोपाल भैया को पुकारा जो तुरंत उसके समक्ष उपस्थित हो गए। बांसुरी बजाना प्रारम्भ किया। बांसुरी की धुन सुनते ही गोविन्द के नेत्र बंद हो गए। उसे ऐसा आभास हुआ कि गोपाल भैया ने उसका हाथ पकड़ रखा है। उसे पता ही नहीं लगा कि कब उसने वह भयानक जंगल पार कर लिया। जंगल के इस ओर आते ही गोपाल ने बांसुरी बजाना बंद कर दिया और गोविन्द से बोले, 'जाओ भ्राता, अब अपने गृह जाओ। माँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहीं हैं।' गोविन्द ने बड़े भैया गोपाल के चरण छू प्रणाम किया, और प्रसन्नता से भैया से फिर कल मिलने का वचन ले अपने गृह की ओर चला।

जब गोविन्द घर पहुंचा तो उसके मुख की प्रसन्नता देख माँ को आश्चर्य हुआ। गोविन्द से माँ ने उसकी इतनी प्रसन्नता का कारण जानना चाहा। बड़े भैया गोपाल की बात को स्मरण रखते हुए कि 'इस मिलन की बात किसी को नहीं बताना', बस एक झूंठा बहाना बना दिया गोविन्द ने। 'माँ मुझे नहीं पता था कि मेरा एक वरिष्ठ साथी जो मेरे ही विद्यालय में कक्षा पांच में पढ़ता है, समीप के दूसरे गांव में रहता है। उसे भी मेरी तरह इस जंगल को पार करना पड़ता है। हम दोनों की अत्यंत गहन मित्रता हो गई है। हम दोनों बातें करते करते क्षण भर में ही इस भयानक जंगल को पार कर जाते हैं। नए मित्र के मिलने की प्रसन्नता से मैं प्रफुल्लित हूँ', बोला गोविन्द। माँ को गोविन्द की बातों पर पूर्ण विश्वास हो गया। हृदय में माँ ने कृष्ण कन्हैया को प्रणाम किया, जिसने उसके पुत्र को इस वरिष्ठ साथी से मिलवा दिया।

इसी प्रकार दिन, सप्ताह और महीने बीतते गए। एक दिन विद्यालय में अध्यापक जी ने बताया कि अगले दिन विद्यालय निरीक्षक विद्यालय का निरीक्षण करने आने वाले हैं। उनके स्वागत के लिए मिष्ठान आदि की व्यवस्था करनी है, अतः प्रत्येक विद्यार्थी अपने अपने घर से कम से कम एक पाव (२५० ग्राम) दूध ले कर आये। छोटे से गोविन्द का माथा ठनका। उसकी माँ तो अत्यंत निर्धन है। किसी प्रकार भोजन का प्रबंध ही हो पाता है। स्वयं उसे स्मरण नहीं कि पिछली बार उसने कब दूध पीया था?

एक पाव दूध का प्रबंध मेरी माँ कैसे करेगी? तभी उसे स्मरण आया। उसके भ्राता गोपाल ने उस से कहा था कि वह गैयाँ चराता है। अब उनमें से कोई न कोई गाय तो दूध अवश्य देती होगी? क्या यह संभव है कि भ्राता गोपाल मेरे लिए एक पाव दूध का प्रबंध कर दे? कोई बात नहीं। अभी विद्यालय बंद होने पर जब भैया मुझे जंगल से पार कराने आएँगे, तो उनसे निवेदन करूंगा।

भैया से मिलते ही दबे स्वर में गोविन्द ने विद्यालय की उन्हें सब कथा सुनाई। 'भैया तुम तो जानते ही हो, माँ कितनी निर्धन हैं। माँ तो इसका प्रबंध संभवतः न कर पाएं। आप तो गैयाँ चराते हैं। क्या आप मेरे लिए एक पाव दूध का प्रबंध कर सकते हैं?', विनीत स्वर में बोला गोविन्द। 'बस, इतनी सी बात। अवश्य कल मैं जब सुबह तुम्हें मिलूंगा तो देखता हूँ कितना दूध तुम्हें दे सकता हूँ। अब एक पाव हो अथवा उस से कम या अधिक, परन्तु दूंगा अवश्य', बोले बड़े भाई गोपाल। गोविन्द का चेहरा प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो गया।

अगले दिन सुबह जब गोपाल भैया मिले तब उन्होंने एक छोटे से पात्र में, कोई कठिनता से आधा छटांक (लगभग ३० ग्राम) दूध रहा होगा, वह गोविन्द को दिया। गोविन्द को बड़ी निराशा हुई। लेकिन संस्कारी बच्चा था। बड़े भाई से कुछ नहीं बोला। चुपचाप इस छोटे से पात्र को अपने हाथ में लिया और उदास मुख से विद्यालय की ओर चला। विद्यालय पहुंचा तो देखा कि अध्यापक को दूध देने के लिए छात्रों की पंक्ति लगी हुई है। वह भी पंक्ति में खड़ा हो गया। अध्यापक जी प्रत्येक छात्र से दूध लेते और एक बड़े पात्र में डालते जाते थे। जब उसकी बारी आई तो आधा छटांक दूध देख अध्यापक जी क्रोधित हो गए। क्रोध में उन्होंने उस पात्र को झटक कर धरा पर पटक दिया।

तभी एक चमत्कार हुआ! धरा पर लुढ़के पात्र से दूध निकलना बंद ही नहीं हो रहा था। आस पास की सभी भूमि दुग्ध से परिपूर्ण हो गई। अध्यापक जी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। यह चमत्कार तो प्रभु द्वारा ही संभव है। इस पात्र का अवश्य ही कोई प्रभु से सम्बन्ध है। तुरंत उठे। पात्र को प्रणाम कर अपने हृदय से लगाया। अपनी नासमझी और त्रुटि की बार बार प्रभु से क्षमा माँगने लगे। गोविन्द हक्का बक्का हो यह दृश्य चुपचाप एक कोने में खड़े हो कर देख रहा था। अध्यापक जी गोविन्द के पास आए और पूछने लगे, 'पुत्र, यह पात्र तुम्हें कहाँ से मिला?' गोविन्द को लगा कि अब बस अध्यापक की बेंत से उस पर मार लगने वाली है। बेचारा पांच वर्ष का बच्चा

ही तो था गोविन्द। अध्यापक की बेंत की मार के डर से गोपाल भैया की बात भूल गया, 'हमारे मिलन की बात किसी को नहीं बतलाना'। रोने लगा और रोकर बोला, 'गुरु जी मेरा कोई दोष नहीं। मेरा बड़ा भैया है गोपाल, उसने यह पात्र और उसका दुग्ध आज सुबह मुझे दिया। वह प्रतिदिन मुझे भयानक जंगल से पार कराने आता है।' अध्यापक जी को समझने में कोई समय नहीं लगा। लगता है प्रभु कोई लीला कर रहे हैं। बच्चे को पुचकारा। प्रेम से बोले, 'गोविन्द, डरो नहीं। क्या तुम मुझे अपने भाई से मिलवा सकते हो?' अध्यापक के प्रेम भरे शब्द सुन गोविन्द की जान में जान आई। 'हाँ, हाँ, क्यों नहीं गुरु जी? वह तो प्रतिदिन मुझे भयानक जंगल से पार कर विद्यालय छोड़ने और विद्यालय बंद होने के बाद मुझे इस जंगल से पार कराने आते हैं। मैं आज ही आपसे मिलवा दूंगा,' बोला अबोध गोविन्द। प्रभु से मिलन की आशा में अध्यापक जी प्रफुल्लित हो गए। अब उन्हें एक एक पल युगों के समान बीत रहा था। किसी प्रकार विद्यालय के बंद होने का समय आया। विद्यालय बंद कर चल दिए गोविन्द के साथ, प्रभु के दर्शन करने।

जंगल में प्रवेश करने से पहले सदैव की तरह गोविन्द ने गोपाल भैया को पुकारा। गोपाल भैया भी तुरंत उपस्थित हो गए। 'भैया, यह मेरे गुरु जी हैं, इनसे मिलिए। आपसे मिलने के बड़े इच्छुक हैं, 'भोले स्वर में बोला गोविन्द और फिर गुरु जी की ओर मुड़ा। 'गुरु जी आप भी मेरे भाई से मिलिए'।

गुरु जी को वहां कुछ भी दिखाई नहीं दिया। 'गोविन्द, यहां तो कोई नहीं है। तुम किस से बातें कर रहे हो?,' उत्सुक्तावस बोले गुरूजी। तभी एक स्वर सुनाई दिया। 'गोविन्द, केवल पवित्र, सत्य एवं अबोध आत्माएं ही मुझे देख सकती हैं। तुम्हारे गुरूजी को मेरा दर्शन करने के लिए अपनी आत्मा को श्रुति अनुसार पवित्र करना होगा। गुरु जी ज्ञानी हैं, श्रुति का ज्ञान है। अतः उन्हें साधना आवश्यक है।'

स्वर सुन गुरूजी भावाविहोर हो गए। 'हे प्रभु, मुझ अज्ञानी को क्षमा करो। आपकी आज्ञा का पालन होगा। आज से मेरा जीवन केवल जन-कल्याण और प्रभु की सेवा को ही अर्पित होगा,' ऐसा कह गुरु जी ने स्वर को दंडवत प्रणाम किया, और गोविन्द को हृदय से लगा लिया। गोविन्द की समझ में इस समय कुछ नहीं आ रहा था। वह तो बस गुरु जी को रोते हुए देखता जा रहा था।

गोविन्द हक्का बक्का कभी गुरूजी और कभी गोपाल भैया को देखता रहा। उसकी छोटी सी समझ में भी अब आ रहा था कि उसके गोपाल भैया कोई और नहीं, परन्तु घर की एक ताक में रखी कृष्ण भगवान् की मूर्ती के सगुण स्वरुप हैं। उसने भी गुरुदेव की तरह उन्हें दंडवत प्रणाम किया। 'हे माधव, जब आप मेरे साथ तो कैसा डर? आज से मैं आपको कष्ट नहीं दूंगा। स्वयं ही जंगल निडर हो पार करूंगा। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए। गोपाल भैया ने गोविन्द को हृदय से लगा लिया। 'पुत्र मेरी जभी भी आवश्यकता हो, बस पुकार लेना। मैं तुरंत आ जाऊँगा,' कह कर गोपाल अदृश्य हो गए।

गुरूजी ने कुछ समय पश्चात अध्यापन कार्य से अवकास ले लिया और प्रभु की सेवा में लग गए। उन्हें प्रभु के दर्शन हुए अथवा नहीं, यह तो नहीं पता, लेकिन प्रभु के स्वर सुनने के बाद उनका जीवन ही बदल गया।

गुरुजी ने अवकास लेने से पूर्व गोविन्द की शिक्षा का आर्थिक रूप से भी पूर्ण प्रबंध कर दिया। समय बीतता चला गया। गोविन्द ने इस विद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात अध्यापन विशेष शिक्षा प्राप्त की और एक अन्य गांव के विद्यालय में अध्यापक के पद पर नियुक्ति पाई। समय आने पर वह प्रधान अध्यापक बन गए। जिस विद्यालय में वह प्रधान अध्यापक थे, वह द्वारका से लगभग दस मील की दूरी पर था। द्वारका और यह गांव, एक ट्रेन सेवा द्वारा जुड़े हुए थे। भाग्य से एक ट्रेन सुबह ६ बजे इस गांव के स्टेशन से द्वारका जाती थी, और वही ट्रेन वापस ८ बजे तक इस विद्यालय के गांव के स्टेशन पर वापस आ जाती थी। प्रधान अध्यापक गोविन्द का प्रतिदिन का नियम था; सुबह ब्रह्ममुहूर्त में ४ बजे तक उठ जाना, दैनिक क्रिया से निवृत हो सुबह की ६ बजे की ट्रेन से द्वारका जा कृष्ण भगवान् के दर्शन करना एवं ८ बजे की ट्रेन से वापस आ विद्यालय में अध्यापन कार्य करना।

यह क्रम शीत ऋतु के लिए तो ठीक था, परन्तु ग्रीष्म ऋतु में विद्यालय का समय बदल जाने से विद्यालय शीघ्र सुबह ७:३० बजे प्रारम्भ हो जाता था। प्रधान अध्यापक ८ बजे तक पहुँच पाते थे। अतः विद्यालय में आधा घंटा देरी से पहुँच पाते थे। कर्तव्यनिष्ठ प्रधान अध्यापक गोविन्द इस समय की पूर्ती विद्यालय बंद होने के पश्चात विद्यार्थिओं को लगातार पढ़ा कर पूरी करते थे। प्रधान अध्यापक गोविन्द के मिलनसार एवं मधुर स्वभाव ने उन्हें अत्यंत लोकप्रिय बना रखा था। उनकी इस लोकप्रियता से विद्यालय

का एक अन्य अध्यापक उनसे बहुत चिढ़ता था। उसने प्रधान अध्यापक को निलंबित कराने की एक योजना सोची। उसने जनपद विद्यालय निरीक्षक को एक शिकायत भरा गुप्त पत्र भेज प्रधान अध्यापक गोविन्द की कार्य में अरुचि एवं देरी से आने का विवरण दिया, और निरीक्षक महोदय से विनती की कि किसी दिन सुबह ७:३० बजे विद्यालय आकर स्वयं ही इसे प्रत्यक्ष देखें। पत्र पा कर निरीक्षक महोदय ने बिना प्रधान अध्यापक गोविन्द को सूचना दिए निरीक्षण का मन बना लिया, और एक दिन पहुँच गए विद्यालय सुबह ही ७ बजे। निरीक्षक के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने विद्यालय प्रारम्भ होने से आधा घंटा पूर्व ही प्रधान अध्यापक गोविन्द को विद्यालय में प्रबंधन कार्य में सलंग्न पाया। जब ७:३० बजे सभी विद्यार्थी आ गए तब हर कक्षा का उन्होंने निरीक्षण किया, और पाया कि हर कक्षा के विद्यार्थी अत्यंत मेधावी हैं। अत्यंत प्रसन्न हो इस ८ बजे की ट्रेन से जो द्वारका से जनपद जाती थी, लौटने का निर्णय किया। प्रधान अध्यापक उन्हें ट्रेन स्टेशन तक छोड़ने जाना चाहते थे, परन्तु उन्होंने मना किया।

जब निरीक्षक महोदय ट्रेन स्टेशन पहुंचे तब तक ट्रेन आ चुकी थी। वह अपने डिब्बे की ओर बढ़ ही रहे थे कि उन्हें पीछे से प्रधान अध्यापक गोविन्द का स्वर सुनाई दिया। आश्चर्य हुआ! उन्होंने तो प्रधान अध्यापक गोविन्द से आने के लिए मना किया था। फिर सोचा कि अवश्य ही शिष्टाचार हेतु वह आए होंगे। उनका अभिवादन स्वीकार करते हुए कहा कि वह उनके विद्यालय से अत्यंत प्रभावित हैं। वह अब वापस जाएं और कार्यभार सम्हालें। वह उनसे मिल ही चुके हैं तथा विद्यालय प्रबंधन की गहन चर्चा कर ही चुके हैं। अगले वर्ष से इस विद्यालय को अधिक अनुदान मिले, इसकी अनुशंसा वह जनपद अधिकारी से करेंगे।

प्रधान अध्यापक गोविन्द ने जैसे ही यह सुना कि निरीक्षक महोदय उनसे विद्यालय में प्रबंधन की गहन चर्चा कर चुके हैं, उनका माथा ठनका। 'मेरे गोपाल को इस छोटे से कार्य के लिए कष्ट उठाना पड़ा। हे द्वारकाधीश, तुझे सत सत नमन। परन्तु मैं तुझे अपने लिए अब कोई कष्ट नहीं दे सकता।' कहते हैं कि वहीं ट्रेन स्टेशन पर ही उन्होंने अपनी योग शक्ति से प्राणांत कर दिया।

'तो यतिन, तुम्हें क्या शिक्षा मिली इस कहानी से?', बोले दादा जी।

'बाबा, मैं अब कभी नहीं डरूंगा। बस कन्हैया का स्मरण करता रहूँगा,' यह कहकर छोटा यतिन दादा जी के आगोश में सो गया।

मुंडन समारोह समाप्त होने के बाद दादा जी गांव लौट गए। इसके कुछ ही दिनों पश्चात विद्यालय की ग्रीष्म कालीन छुट्टियां हो गईं। तब वह अपने माँ, पिता, बड़े भाई और छोटी बहन के साथ पितृग्रह दादा जी के पास छुट्टियां बिताने गया।

एक दिन जब वह सुबह सोकर उठा ही था कि अचानक उसे दादा जी का कुछ घबराया हुआ सा स्वर सुनाई दिया, 'बहू तेरे चहरे को क्या हुआ? तेरा गला तो सूजा हुआ लगता है। तू आराम कर बहू। अरे, कोई वैद्य जी को बुलाओ और बहू को दिखाओ। मुझे वह अधिक अस्वस्थ लग रही है।'

दादा जी माँ को बहू कहकर सम्बोधित करते थे। आभास हुआ कि अवश्य ही माँ की तबियत ठीक नहीं है और दादा जी चिंतित हैं।

तुरंत वैद्य जी को बुलाया गया। जांच पड़ताल के बाद वैद्य जी बोले, 'बहू के गले में गांठ एवं सूजन है। तुरंत इसको शहर के बड़े अस्पताल में ले जाओ। इसे शल्य चिकित्सा की आवश्यक्ता हो सकती है।' वैद्य जी के आदेश पर बहू को पास के शहर के बड़े अस्पताल में ले जाया गया। वहां अच्छी तरह से जांच पड़ताल के बाद बहू की बीमारी को चिकित्सकों ने प्राणघातक करार दे दिया। कुछ ही समय में बहू की मृत्यु हो गई।

दाह संस्कार के पश्चात पिता अपनी नौकरी पर लौट गए। उसके बड़े भाई भी उन्हीं के साथ चले गए। छोटी बहन को नानी ले गईं। यतिन को दादा जी ने अपने पास ही रख लिया। अब दो छोटे बच्चों को बिना माँ के अकेले पिता नौकरी के साथ कैसे सम्हाल सकते थे?

समय बीतता चला गया। दादा जी प्रतिदिन नई नई कहानियां इस बच्चे को सुनाया करते थे। नवरात्री उत्सव आया। दादा जी कर्मकांडी ब्राह्मण थे। प्रतिदिन देवीओं की पूजा होती। बच्चे की उत्सुकता जान वह प्रतिदिन हर देवी के बारे में नई कहानी सुनाते। माँ का नाम सुन बच्चे को अपनी माँ की धुंधली याद आ जाती और वह रोने

लगता। दादा जी ने कहा,'पौत्र, मत रो। तेरी माँ तो शरण्या माँ के पास हैं। जभी भी तुझे आवश्यक्ता हो, बस उन्हीं को पुकार लेना। दौड़ी चली आएंगी तेरी मदद के लिए। जीवन में कभी हताश न होना।'

'यह शरण्या माँ कौन हैं, बाबा?' बच्चे ने दादा जी से पूछा। ' शरण्या, शरण देने वाली माँ। यह माँ दुर्गा का ही एक सौम्य रूप हैं। दक्षिण में इन्हें माँ ललिता देवी त्रिपुरसुंदरी के रूप में भी जाना जाता है। आज मैं तुम्हें इन्हीं की कहानी सुनाऊँगा,' बोले दादा जी।

बच्चे को पौराणिक कहानियां अति प्रिय लगती थीं। सब कुछ छोड़ ध्यानमग्न वह अपने दादा जी से पौराणिक कथाएं सुनता था। चेहरे पर मुस्कान आ गई, और बैठ गया दादा जी के समीप।

शरण्या माँ

दादा जी ने कथा सुनानी प्रारम्भ की।

श्रीरामचरितमानस में वर्णित यह उस समय की कथा है जब भगवान् श्री राम अपने पिता के आदेश पर वनवास कर रहे थे, और माँ सीता को दुष्ट रावण हरण कर ले गया। श्री राम अपने भ्राता लक्ष्मण सहित लीलावश मनुष्यों की भांति पत्नी के विरह से व्याकुल हो रोते हुए वन में सीता को ढूंढ रहे थे। उसी समय महादेव शिव माँ सती के साथ महर्षि अगस्त्य के आश्रम से कैलाश लौट रहे थे। मार्ग में जब उन्होंने प्रभु को देखा तो अन्तर्यामी महादेव ने उनको नमन किया। माँ सती को उनके नमन करने पर आश्चर्य हुआ। एक साधारण नर जो पत्नी के वियोग में प्रलाप कर रहा है, वह नारायण कैसे हो सकता है? महादेव ने उन्हें अपनी संतुष्टि के लिए मर्यादा में रहते हुए परीक्षा देने की अनुमति दे दी।

महादेव बोले, 'जो तुम्हारे मन में बहुत संदेह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं ले लेतीं? जब तक तुम परीक्षा लेकर और अपने हृदय का संशय दूर कर मेरे पास लौट नहीं आओगी, तब तक मैं इसी बड़ की छाँह में बैठा तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा।'

अभाग्यवश माँ सती ने श्री राम को परखने के लिए माँ सीता का रूप धारण कर लिया। जगद्जननी माँ सती को माँ सीता के रूप में देखकर प्रभु श्री राम ने उन्हें पहचान कर तुरंत उनका अभिनन्दन किया।

माँ सती के माँ सीता के रूप धारण करने से महादेव अत्यंत दुखी हुए। उन्होंने माँ सती का परित्याग कर दिया और गहन समाधि में लीन हो गए।

सहस्त्रों वर्ष बीतने के बाद जब महादेव की समाधि टूटी तो उन्होंने माँ सती को अत्यंत दुःखी पाया। उनका दुःख दूर करने के लिए अपने पास बिठाकर प्रेम से पौराणिक कथाएं कहने लगे। उसी समय माँ सती के पिता प्रजापति ने एक वृहद यग्न का आयोजन किया जिसमें उन्होंने सभी देवी देवता को आमंत्रित किया। लेकिन अपने एक पुराने वैर के कारण महादेव और माँ सती को आमंत्रित नहीं किया। माँ सती पति

के परित्याग से वैसे ही अत्यंत दुःखी थीं। उनका हृदय अपने माता पिता, बहनों एवं परिवार जनों से मिलने को हुआ। महादेव ने उन्हें बहुत समझाया।

महादेव बोले, ‘यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाए भी जाना चाहिए, तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो उसके घर जाने से कल्याण नहीं होता।‘

लेकिन माँ सती पितृग्रह जाने के लिए अत्यंत उत्सुक थीं। तब महादेव ने उन्हें उनकी सुरक्षा हेतु अपने कुछ मुख्य गणों के साथ विदा किया।

जब माँ सती पितृग्रह में यग्न वेदी पर पहुंचीं तो उन्हें वहां उनके पति महादेव का भाग नहीं दिखाई दिया। उनसे शिव जी का अपमान सहा नहीं गया।

माँ सती ने अपने पिता, पुरोहितगण और सभी सभासदों को पुकारते हुए कहा, ‘चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले वृषकेतु शिव जी को हृदय में धारण करके मैं इस शरीर को तुरंत ही त्याग दूँगी। ऐसा कहकर सती जी ने योगाग्नि से अपना शरीर भस्म कर डाला। सारी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया।‘

शिव शंकर महादेव ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने दक्ष का सर काटकर इस दुष्कृति का उसे दंड दिया। तत्पश्चात कृपानिधान महादेव ने भगवान् विष्णु एवं ब्रह्मदेव के अनुरोध पर एक बकरे का सर लगाकर दक्ष को जीवन दान भी दिया।

इस घटना का महादेव के हृदय पर अत्यंत गहरा प्रभाव पड़ा। वह अपनी पत्नी सती को हृदय से अति प्रेम करते थे। सती वियोग के पश्चात भगवान शिव सर्वदा ध्यानमग्न रहते थे। उन्होंने अपने संपूर्ण कर्म का परित्याग कर दिया था, जिसके कारण तीनों लोकों के संचालन में व्याधि उत्पन्न हो रही थी। उधर तारकासुर ने ब्रह्मदेव की अत्यंत कठिन साधना कर ब्रह्मा जी से वर प्राप्त किया था कि उसकी मृत्यु शिव के पुत्र द्वारा ही होगी। वह एक प्रकार से अमर हो गया था। माँ सती के देह त्याग करने के पश्चात शिव जी संसार से विरक्त हो घोर ध्यान में चले गए थे तथा उनकी अर्धांग्नी न होने से पुत्र संभावना नहीं थी। तारकासुर तीनों लोकों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर एवं समस्त देवताओं को प्रताड़ित कर समस्त भोगों को स्वयं ही भोगने लगा था।

इसी समय माँ सती ने हिमालय के यहाँ माँ पार्वती के रूप में पुनर्जन्म लिया। ब्रह्मऋषि नारद जी के आवाह्न पर उन्होंने भगवान शिव को पति रूप में पाने हेतु भगवान् शिव की कठोर साधना की।

सभी देवगण तारकासुर के अत्याचार से भयभीत हो अब चाहते थे कि भगवान् महादेव अपनी साधना से जागें और माँ पार्वती से विवाह करें, ताकि उनके पुत्र इस असुर तारकासुर का वध करें। देवताओं ने भगवान शिव को ध्यान से जगाने हेतु कामदेव को कैलाश भेजा। कामदेव ने कुसुम सर नामक मोहिनी वाण से भगवान शिव पर प्रहार किया। परिणाम स्वरूप शिव जी का ध्यान भंग हो गया।

समाधि से इस प्रकार जगाने से महादेव कुपित हो गए। देखते ही देखते भगवान शिव के तीसरे नेत्र से उत्पन्न क्रोध-अग्नि ने कामदेव को जला कर भस्म कर दिया।

कामदेव की पत्नी रति द्वारा अत्यंत दारुण विलाप करने पर भगवान शिव ने कामदेव को पुनः द्वापर युग में भगवान कृष्ण के पुत्र रूप में जन्म धारण करने का वरदान दिया। इस प्रकार महादेव का आशीर्वाद पा रति स्वर्गलोक को प्रस्थान कर गईं।

महादेव की समाधि भंग होने के बाद ब्रह्मदेव एवं सभी देवता प्रगट हुए, और महादेव की स्तुति करने लगे। ब्रह्मदेव ने उन्हें शीघ्र पार्वती से विवाह करने का अनुरोध किया, जिसे महादेव ने सहर्ष स्वीकार किया।

जिस स्थान पर महादेव ने कामदेव को भस्म किया था, अब उस स्थान की कथा आगे सुनो।

सभी देवताओं तथा रति के जाने के पश्चात भगवान शिव के एक गण द्वारा कामदेव की भस्म से एक मूर्ति निर्मित की गई। उस निर्मित मूर्ति से एक पुरुष का प्राकट्य हुआ। उस प्राकट्य पुरुष ने भगवान शिव की अति उत्तम स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न हो भगवान शिव ने ‘भण्ड (अच्छा), भण्ड (अच्छा)‘ कहा। तदन्तर, भगवान शिव द्वारा उस पुरुष का नाम ‘भण्ड’ रखा गया, तथा उसे ६० हजार वर्षों तक राज करने का वरदान दिया। चूँकि भण्ड की उत्पत्ति शिव के क्रोध द्वारा भस्मित कामदेव की भस्म

से हुई थी अतः भण्ड पूर्ण रूप से तमोगुण सम्पन्न था। उसकी इस आसुरीय प्रकृति के कारण उसका नाम भण्डासुर पड़ गया।

भण्डासुर के महादेव द्वारा वरदान मिलने की बात थोड़ी ही देर में सम्पूर्ण भुवनों में फैल गयी। दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य यह समाचार पाकर भण्डासुर के पास आये। उनके साथ दैत्यों का समुदाय भी था। शुक्राचार्य ने मय के द्वारा शोणितपुर नगर को फिर से सुसज्जित कराकर वहाँ भण्डासुर का अभिषेक कर दिया।

प्रारम्भ में भण्डासुर शिव की अर्चना करता और उनके आदेश पर चलता था। उसके अनुयायी दैत्य भी धर्म का अनुसरण करते थे। प्रत्येक घर वेदों की ध्वनि से गुंजित रहता था। घर घर में यज्ञ होता था। इस तरह सौभाग्यशाली भण्ड की सुख समृद्धि के साठ हजार वर्ष देखते देखते बीत गये।

भण्डासुर बाद में माया की चपेट में पड़ गया। अब चार पत्नियों से भी उसे संतोष न था। वह एक दिव्य वारांगना के मोह में पड़ गया। उसके मन्त्री आदि अनुयायी भी विलासी बनते चले गये। अब न किसी को भगवान् शंकर याद आते, न पूजा पाठ ही। यज्ञ और वेद के उच्चारण भी अब बंद हो गये थे।

वह धीरे धीरे तीनों लोकों पर भयंकर उत्पात मचाने लगा। देवराज इंद्र के राज्य के समान ही भण्डासुर ने स्वर्ग जैसे राज्य का निर्माण किया तथा राज करने लगा। तदन्तर, भण्डासुर ने स्वर्ग लोक पर आक्रमण कर देवराज इन्द्र तथा स्वर्ग लोक को चारों ओर से घेर लिया। भयभीत इंद्र देवर्षि नारद मुनि की शरण में गए तथा इस समस्या के निवारण हेतु उपाय पूछा। देवर्षि नारद ने आदि-शक्ति की यथा विधि आराधना करने का परामर्श दिया। देवराज इंद्र ने देवर्षि नारद द्वारा बताये हुए साधना पथ का अनुसरण कर देवी की आराधना प्रारम्भ की।

इधर दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य भण्डासुर के पास आये और उसे सावधान करते हुए उन्होंने कहा, 'देवता अपनी विजय के लिये हिमालय में आदि-शक्ति की उपासना कर रहे हैं। यदि आदि-शक्ति ने उनकी प्रार्थना सुन ली तो तुम कहीं के न रह जाओगे। अत: तुम शीघ्र ही देवताओं की पूजा में विघ्न डालो।'

भण्डासुर दल बल के साथ देवताओं पर चढ़ आया। आदि-शक्ति ने अपनी शरण में आये हुए देवताओं की रक्षा के लिये ज्योति की एक अलंघ्य दीवार खड़ी कर दी। भण्डासुर यह देखकर क्रोध से जल उठा। उसने दानवास्त्र चलाकर उसे तोड़ डाला। परंतु तत्क्षण ही वहाँ पुनः अलंघ्य दीवार खड़ी हो गयी। इस बार भण्डासुर ने वायव्यास्त्र से इसे तोड़ा। किंतु तत्क्षण भण्डासुर ने उसी दीवार को फिर से खड़ी देखा। तोड़ने में समय लगता था किंतु दीवार खड़ी होने में समय नहीं लगता था। हारकर भण्डासुर शोणितपुर लौट आया।

भण्डासुर लौट तो आया था किंतु उसके भय से देवताओं की दशा दयनीय हो गयी थी। वे सोचते थे कि जिस दिन दीवार नहीं रहेगी उस दिन हम लोगों का बच सकना कठिन हो जायगा। अब कहीं छिपकर नहीं रहा जा सकता। अन्त में देवताओं ने निर्णय लिया कि या तो आदि-शक्ति दर्शन दें और हमारी रक्षा करें, या यहीं भण्डासुर के हाथों मारे जायें। उन्होंने अपनी आराधना और बढ़ा दी। हृदय की पुकार थी। आदि-शक्ति प्रकट हो गयीं। उनके अद्भुत दर्शन पाकर देवता कृतकृत्य हो गये। गद्गद होकर देवताओं ने माँ आदि-शक्ति की स्तुति की।

आदि-शक्ति का स्वरूप श्रृंगार देवी के रूप में था। ब्रह्मा ने यह देखकर सोचा कि इनका विवाह परमात्मा शंकर से ही सम्भव है। इतना संकल्प करते ही सौन्दर्यसार के स्वरूप में भगवान् शंकर कुमार बनकर वहाँ प्रकट हो गये। यह देखकर सब के सब आनन्द में विभोर हो गये। ब्रह्मा ने उनका नाम कामेश्वर रख दिया। जब कामेश्वर आदि-शक्ति के सामने लाये गये तब दोनों एक दूसरे को देखकर मुग्ध हो गये। देवताओं ने उनका विवाह करा दिया, और आदि-शक्ति को उस पुर की अधीश्वरी बना दिया। शक्ति और शक्तिमान का मेल हो जाने से वहाँ अखण्ड आनन्द की वृष्टि होने लगी। बहुत दिनों तक उत्साह के साथ विवाहोत्सव मनाया गया।

उधर भण्डासुर ने सारे विश्व को त्रस्त कर रखा था। उसने अहंकार में आकर अपने जनक श्री शंकर जी की भी घोर अवहेलना की। देवता तब श्रृंगार रूप में अवतरित माँ की शरण में गए और विनती करने लगे, 'हे माँ शरण्या, हम सब अब तेरी शरण में हैं। हे ललिताम्बा (अत्यंत सुंदरी माँ), हमारी रक्षा करो, रक्षा करो, रक्षा करो।'

इस प्रकार आदि-प्रकृति माँ का नाम शरण्या पड़ा।

देवताओं की दशा पर द्रवित हो तब विश्व की रक्षा के लिये माँ शरण्या (ललिताम्बा) ने भण्डासुर के साथ युद्ध किया। युद्ध में भण्डासुर ने 'पाषण्ड' अस्त्र का प्रयोग किया। तब पराम्बा ने 'गायत्री' के द्वारा उसका निवारण किया। जब भण्डासुर ने 'स्मृतिनाश' अस्त्र का प्रयोग किया तब माँ ने 'धारणा' के द्वारा उसे नष्ट किया। जब भण्डासुर ने 'यक्ष्मा' आदि रोगरूप अस्त्रों का प्रयोग किया, तब पराम्बा ने 'अच्युत, अनन्त, गोविन्द' (अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात्) नामरूप मन्त्रों से उसका निवारण किया। इसके बाद भण्डासुर ने हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कंस और महिषासुर को उत्पन्न किया, तब ललिताम्बा ने अपनी दसों अंगुलियों के नख से वराह, नृसिंह, राम, कृष्ण, दुर्गा आदि को उत्पन्न किया। युद्ध के अन्तिम भाग में पराम्बा ने भण्डासुर का उद्धार 'कामेश्वर' अस्त्र से किया। माता ललिताम्बा के अस्त्र-शस्त्र इक्षुदण्ड और पुष्प थे।

इस तरह माँ ने भण्डासुर का वध कर देवराज पर कृपा की, तथा समस्त देवताओं को भय मुक्त किया।

कथा समाप्त कर दादा जी बोले, 'हे पौत्र, तब से ऐसी आस्था है कि जभी भी कभी कोई कष्ट में हो, और आदि-प्रकृति माँ के शरण्या अथवा ललिताम्बा रूप का श्रद्धा और हृदय से स्मरण कर उन्हें मदद के लिए बुलाता है, तो माँ तुरंत प्रगट हो उसकी मदद कर कष्ट का निवारण करती हैं।

यह बात बालक के मन में घर कर गई। हर समय बस वह माँ के बारे में ही सोचता रहता। समय बीतता चला गया। बालक ने चौदहवें वर्ष में जैसे ही कदम रक्खा, एक दुःखद घटना घट गई। दादा जी इस संसार को छोड़ कर चले गए।

दादा जी का स्वर्गवास

वैसे तो दादा जी अपने इस पौत्र यतिन के साथ गांव में अकेले ही रहते थे लेकिन कभी कभी पिता जी, परन्तु चाचा जी का सदैव आना जाना रहता था। पितामह अब वृद्ध हो चले थे इसलिए चाचा जी ही कृषि सम्बन्धी प्रबंधन करते थे। इस कारण उनका आना जाना नियमित रूप से रहता था। वह अकेले ही आते थे। उनका परिवार शहर में ही रहता था। यतिन अब गांव के विद्यालय में नवीं कक्षा का छात्र था। इस बार गर्मीओं की छुट्टियों में न जाने क्यों चाचा जी अपने सुपुत्र के साथ आए। यतिन को आश्चर्य अवश्य हुआ लेकिन अंदर से उसे अति प्रसन्नता हुई। चाचा जी का पुत्र आयु में यतिन से थोड़ा छोटा अवश्य था परन्तु दोनों में खूब बनती थी। दोनों मित्र बन गए और अपना समय प्रतिदिन नई नई क्रीड़ाओं में व्यतीत करने लगे।

इस ८० वर्ष से भी अधिक आयु में दादा जी स्वस्थ एवं अति प्रसन्नचित रहते थे। चारों (स्वयं दादा जी, चाचा जी, यतिन एवं चाचा जी का पुत्र) के लिए भोजन तक अपने हाथों से ही बनाते थे। उनकी नियमित क्रिया में अवश्य कोई बदलाव नहीं आया। सुबह ब्रह्म्म-मुहूर्त में उठना, नित्य कर्म कर स्नादि आदि से निवृत हो अपनी माला फेरना, फिर सभी के लिए स्वयं दोनों समय, दोपहर एवं सांय कालीन, भोजन पकाना। वह रात्रि को शीघ्र ही, आठ बजे तक, सोने चले जाते थे। सुबह सोने से कब जागते थे, यतिन को पता नहीं। लेकिन जब वह सुबह सोकर उठता था तो दादा जी पूजा कर रहे होते थे।

आज जब यतिन सुबह सोकर उठा तो उसे दादा जी कहीं दिखाई नहीं दिए। चाचा जी का पुत्र तो अभी सो ही रहा था। चाचा जी भी कहीं दिखाई नहीं दिए। संभवतः खेतों पर चले गए होंगे। वह अक्सर सुबह कृषि कर्मिओं के साथ शुद्ध वायु में घूमने हेतु तथा उनके कार्य का निरीक्षण करने चले जाया करते थे। लेकिन दादा जी कहाँ गए? यतिन यह तो सोच भी नहीं सकता था कि दादा जी अभी सो कर भी नहीं उठे होंगे। फिर भी वह उनकी चारपाई के पास पहुंचा और आश्चर्यचकित रह गया कि दादा जी अभी तक सो रहे हैं।

यतिन ने दादा जी को जगाने का प्रयास किया। लेकिन न तो वह उठते और न ही कोई प्रत्युत्तर देते। इसी बीच यतिन ने चाचा जी का स्वर सुना। संभवतः वह खेतों से

वापस आ गए थे। तुरंत दौड़ कर उनके पास गया और हांफते हुए एक ही सांस में बताया कि दादा जी अभी तक सो रहे हैं। उसने जगाने का प्रयास किया पर वह उठते ही नहीं। चाचा जी का माथा ठनका। तुरंत दादा जी की शैया के पास गए। उनके चेहरे के भाव परिवर्तन से यतिन को कुछ ऐसा आभास हुआ कि संभवतः कुछ गड़बड़ है। चाचा जी बोले, 'जाओ तुरंत वैद्य जी को बुलाओ'। यतिन तुरंत वैद्य जी के गृह भागता हुआ गया और कुछ ही क्षणों में उन्हें बुला लाया। वैद्य जी पारवारिक मित्र थे, अतः सब कार्य छोड़ तुरन्त यतिन के साथ घर चले आए।

'इन्हे चारपाई से नीचे उतार धरती माँ के आसन पर लिटाओ। अब यह स्वर्गवासी हुए,' आते ही नाड़ी देख वैद्य जी बोले। तुरंत चारपाई के पास ही स्वच्छ श्वेत कपड़ों की शैया बनाई गई और दादा जी को चारपाई से उतार कर उस पर लिटा दिया गया। यतिन को समझने में देर नहीं लगी कि अब दादा जी इस दुनिया में नहीं रहे।

दादा जी की मृत्यु का समाचार दावानल की तरह समूचे गांव में तुरंत फैल गया। दादा जी अत्यंत लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। लोगों द्वारा संवेदना व्यक्त करने का तांता लग गया। चाचा जी सब से मिलते रहे और संवेदना स्वीकार करते रहे। दादा जी के बड़े पुत्र, यतिन के पिता, जो नौकरी पर दूसरे स्थान पर रहते थे, उन्हें संदेश भेज दिया गया।

गर्मीओं का मौसम था। शव को अधिक देर तक रखना असंभव था। वहां गांव में उन दिनों बर्फ की पट्टी आदि का कोई प्रबंध नहीं था जिससे शव को ठंडा रख कुछ समय तक सम्बन्धियों के आने तक प्रतीक्षा की जा सके। यद्यपि शव दाह संस्कार पर बड़े पुत्र का अधिकार होता है, लेकिन बड़े पुत्र के आने के समय की अनिश्चितता के कारण वैद्य जी ने चाचा जी को आदेश दिया, शीघ्र अति शीघ्र शव दाह करने का।

वैद्य जी के आदेश पर चाचा जी ने शव दाह संस्कार की रीतियों पर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। पंडित जी आ चुके थे। पंडित जी के आदेशानुसार कार्य होने लगे। अर्थी को पुष्पादि से सजा सँवाकर एक विमान रूपी रथ में रख दिया गया। वाद्यों के बाजन के साथ 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि के साथ चाचाजी और गांव के कुछ अन्य प्रतिष्ठित लोगों ने अर्थी को उठाया और शमशान भूमि की ओर प्रस्थान किया। अर्थी के पीछे सहस्त्रों की संख्या में लोग चल रहे थे। यतिन भी उस झुण्ड के साथ हो लिया।

चाचा जी ने दादा जी का दाह संस्कार पूरी रीति प्रथा के साथ सम्पन्न किया। घर आकर सबने स्नान इत्यादि क्रिया सम्पूर्ण की। सम्बन्धियों के आने का भी तांता लग गया। अगले कुछ ही दिनों में यतिन के पिता जी, बड़े भाई एवं समस्त अन्य परिवार भी पहुँच गए।

यतिन को कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा था कि दादा जी की मृत्यु से दुःखी होने के स्थान पर पूरा समुदाय संभवतः आनंद का अनुभव कर रहा था। यतिन को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि आखिर ऐसा क्यों? उसकी छोटी सी समझ के अनुसार तो गृह के एक वरिष्ठ प्रिय सदस्य की मृत्यु पर शोक मनाना चाहिए, लेकिन यहां तो सर्वदा उत्सव सा प्रतीत हो रहा था। बस, उसी को दादा जी के चले जाने का शोक हो रहा था। साहस कर उसने चाचा जी से यह प्रश्न पूछ ही लिया।

चाचा जी हँसे और बोले, 'अरे बेटा, शोक किस बात का? तेरे दादा जी ने ८० से भी अधिक वसंत ऋतुएँ देखीं। पुत्रों का परिवार फलते फूलता देखा। पौत्र और पौत्रिओं का सुख पाया। जीवन में समस्त आनंद की अनुभूति की और अब मृत्यु भी ऐसी पाई जो संतों को भी दुर्लभ। एक दिन पहले सांय स्वयं भोजन बनाया और हम सब को खिलाया। कितने संतुष्ट और प्रसन्न दिखाई देते थे। अगले दिन इस नश्वर शरीर को बिना किसी कष्ट के त्याग दिया। यह तो उनके जीवन एवं जीवन सुखान्त का उत्सव मनाने की घड़ी है। तू भी अपने आंसू पोंछ वरना तेरे दादा जी की आत्मा को कष्ट होगा।'

बेचारा यतिन, चाचा जी के इन दार्शनिक शब्दों के अर्थ को कहाँ समझ पाता? उसे तो ऐसा आभास हुआ कि उसे अपने प्रिय दादा जी की मृत्यु पर शोक तो दूर रोने भी नहीं दिया जा रहा है।

देखते देखते दादा जी की अंत्येष्टि क्रिया का अंतिम दिन (तेरहवां दिन) आ गया। बहुत बड़ा भोज आयोजित किया गया था। अपने गांव के ही नहीं, आस पास के गई गांवों के लोगों को सपरिवार भोज में सम्मिलित होना का निमंत्रण दिया गया था। यतिन के पिता जी, चाचा जी, समस्त एकत्रित परिवार एवं मित्रगण इन सभी निमंत्रित व्यक्तिओं और उनके परिवारों का स्वागत कर रहे थे और बड़े गर्व के साथ यह बताते नहीं थकते थे कि कितनी दुर्लभ संत समान मृत्यु पाई है, मेरे अत्यंत पुण्य, सदाचारी एवं संत

पिता ने। यतिन का शोक अब शनैः शनैः क्रोध में परवर्तित होने लगा था। कितने स्वार्थी हैं यह परिवार वाले। उनके जीवित रहते हुए इस संत के दर्शन एवं प्रवचन सुनने का कभी किसी को समय नहीं मिला। ८० वर्ष से भी अधिक वृद्ध आयु में अकेले पौत्र के साथ रह कर स्वयं भोजन बना खाते एवं एक प्रकार से एकल जीवन ही व्यतीत करते थे। इस जीवनचर्या में कितना कष्ट उन्हें होता होगा, इसका तो किसी को संभवतः भान नहीं और अब उनकी मृत्यु पर उनकी संतता के चर्चे करते नहीं अघाते हैं। लेकिन बेचारा यतिन, क्रोध भी किस पर करता?

दादा जी की मृत्यु हुए बीस दिन बीत गए हैं। धीरे धीरे सभी एकत्रित सम्बन्धी एवं परिवारजन अपने अपने घरों को जा चुके हैं। यतिन के पिता जी भी चले गए। बस चाचा जी और उनका परिवार अवश्य अभी भी रुका हुआ है। दादा जी की मृत्यु के करीब एक महीने बाद वह सब भी चले गए। रह गया यतिन अकेला इस घर में। हाँ, जाने से पहले चाचा जी ने एक दूर के सम्बन्धी के यहां यतिन के खाने की व्यवस्था अवश्य कर दी थी।

यतिन अकेला रह गया, बस दादा जी की स्मृतियों के साथ। जब वह अकेला होता, उसे दादा जी की हर बात स्मरण आने लगती। क्या व्यक्तित्व था दादा जी का? प्रत्येक व्यक्ति उनके समक्ष नत मस्तक होने को विवश हो जाता था।

दादा जी का व्यक्तित्व

जून का तपन भरा मास था। जून महीने के तपते दिवस के बारे में यतिन ने एक छोटी सी कविता लिखी थी, वह उसे स्मरण हो आई।

आग के गोले बरसाते रवि ने खेतों को झुलसा दिया है ।
अंबर तपाकर सामान्य जन जीवन दूभर कर दिया है ।।
झुलसते घास पौधे वनस्पति को मृतमय बना दिया है ।
लू की तपन ने पथिक जनों को विचलित कर दिया है ।।
पसीनों से लथपथ कृषकों के हृदय को दहला दिया है ।
जल ढूँढ़ते प्यासे पक्षीओं को विचलित कर दिया है ।।
छाँव न मिले तो बेहोशी का आभास रुग्ण कर रहा है ।
भोर होते ही सूनी गलियों से स्वान स्वर तड़पा रहा है ।।
गर्मी का मौसम अब इस तरह सभी को सता रहा है ।
प्रत्येक जन मानस प्रभु से वर्षा की कामना कर रहा है ।।

इस गर्मी की परवाह किए बिना यतिन शफी चाचा एवं नत्थी के साथ खरीफ फसल बोआई के लिए धरती को तैयार करने के लिए घूरों से उठाई हुई कम्पोस्ट खाद लगवाता रहता था। शफी चाचा और नत्थी पारिवारिक कृषि कर्मी थे। मोहम्मद शफी अहमद (शफी) यतिन के पिता की आयु समान थे, अतः वह उन्हें चाचा नाम से ही सम्बोधित करता था। नत्थी एक पिछड़ी जाती से सम्बंधित थे। एक मुसलमान और एक पिछड़ी जाती के कृषि कर्मिओं के साथ एक ब्राह्मण पुत्र उसी तरह कार्य करता था जैसे वह अपने परिवार के सदस्य ही हों। शफी चाचा से तो उसे विशेष प्रेम था। शफी चाचा की पत्नी, आइशा चाची, यतिन का पूर्ण ध्यान रखती थीं। सूर्य निकलने पर सुबह नास्ते में जब वह शफी को खेतों में कुछ भोज ले कर आतीं तो यतिन के लिए मट्ठा लाना कभी नहीं भूलतीं थी। अब एक ब्राह्मण पुत्र यतिन मुसलमान शफी के गृह से आए भोज, जिसमें कभी कभी मांसाहार भी होता था, तो कैसे खाएगा, परन्तु मट्ठा तो पी ही सकता था। यतिन को नमकीन स्वादिष्ट मट्ठा पीने में कभी कोई आपत्ति नहीं हुई। गर्मिओं के दिनों में कृषि कार्य सुबह ५ बजे से प्रारम्भ कर दस बजे तक समाप्त कर विश्राम के लिए सभी अपने अपने गृह आ जाते थे। यतिन भी फिर नहा धो कर अपने दूर के रिश्ते रमेश (रम्मू) चाचा के यहां दोपहर के भोजन के लिए

चला जाता था। भोजन कर अपने गृह जब वापस आता तो उसके विद्यालय के सहपाठी भी आ जाते और फिर जमती थी चौपड़ पण। दोपहर बाद शफी चाचा और नत्थी तो आवश्यक्तानुसार खेतों में कार्य के लिए चले जाते थे पर यतिन अधिकतर घर में ही रहता था। सांय को रम्मू चाचा अथवा अपनी माँ की मित्र मौसी के गृह चला जाता था, और भोजन कर लौटने के बाद छत पर दो चार बाल्टी पानी डाल तपती हुई छत को शीतल कर बिस्तर लगा वहीं सो जाता था। बस यही प्रतिदिन की दिनचर्या रहती थी।

आज रात्रि को यतिन छत पर सोने का प्रयास कर रहा था तो दादा जी की पुरानी स्मृतियाँ उसके मस्तिष्क में छाने लगीं ।

दादा जी कर्मकांडी एवं अपने धर्म, सनातन धर्म, के प्रति अत्यंत निष्ठावान अवश्य थे परन्तु उनमें किसी और धर्म अथवा जाति के प्रति कोई भेद भाव की भावना नहीं थी। उनका दृढ विश्वास था कि प्रत्येक धर्म नर नारी को केवल एक ही उद्देश्य की ओर प्रेरित करता है - मानव धर्म एवं मानवता। यह वह काल था जब गांवों में जातिवाद और छूत-अछूत की परम्परा चरम सीमा पर थी, परन्तु दादा जी के ह्रदय में कभी किसी निम्न जाति के प्रति छूत-अछूत की भावना कभी जाग्रत नहीं हुई। दादा जी अक्सर कहा करते थे कि जातिवाद सनातन धर्म में कार्यों के अधिकार और वितरण के कारण है। किसी उच्च जाति अथवा निम्न जाति में जन्म लेने से कोई ऊंचा अथवा नीचा नहीं हो जाता। १४वीं शताब्दी में अवतरित भक्ति काल के प्रवर्तक अपने गुरुदेव भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी का वह सदैव उदाहरण देते थे जिन्होंने मुस्लिम सम्प्रदाय के संत कबीर और चर्मकर्म व्यवसाय से सम्बंधित संत रैदास को अपना शिष्य बना उच्च शिक्षा प्रदान कर श्री हरि के साक्षात दर्शन कराए। उनके अत्यंत निकटतम कृषि कर्मिओं में शफी चाचा, एक मुस्लिम सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते थे जबकि नत्थी चर्मकार जाति से सम्बन्ध रखते थे। दोनों को ही वह अपने पुत्रवत प्रेम करते थे। कृषि कार्य में जाने से पहले उनको सुबह का चाय नास्ता देकर ही खेतों में जाने की अनुमति देते थे। शफी चाचा एवं आइशा चाची से तो उन्हें विशेषकर अत्यंत प्रेम था। शफी चाचा को अपने तीसरे पुत्र की भांति और आइशा चाची को पुत्रीवत प्रेम करते थे। शफी चाचा के वेतन के साथ हर उत्सव पर वह भेंट देना उन्हें नहीं भूलते थे।

शफी चाचा और आइशा चाची के प्रति इतने प्रेम का कारण जानने की यतिन को अत्यंत जिज्ञासा थी। अतः एक दिन उसने दादा जी यह पूछ ही लिया।

'दादा जी, गांव के सभी भिन्न भिन्न समुदाय के लोग अपने समुदायों के साथ अलग अलग मोहल्लों में रहते हैं न? अब देखो नत्थी तो जाति से चर्मकार हैं, वह चर्मकारों के मोहल्ले में रहते हैं। शफी चाचा तो मुसलमान हैं न, वह मुस्लिम समुदाय के मोहल्ले में क्यों नहीं रहते? उनका घर तो हमारे घर के पास ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के निवास के बीच में ही है,' एक दिन पूछा यतिन ने। यथार्थ में मोहम्मद शफी अहमद का घर यतिन के घर से लगा हुआ ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के मोहल्ले में ही था।

दादा जी बोले, 'बेटा यतिन, आज से संभवतः २५० वर्ष पूर्व शफी के पूर्वज क्षत्रिय ही थे। तुम्हें जानकार अत्यंत आश्चर्य होगा कि वह क्षत्रपति शिवाजी की सेना के परम देशभक्त सैनिक थे। उस समय हमारे भारत पर मुग़लों का शासन था और औरंगज़ेब सम्राट थे। अभाग्य से औरंगज़ेब की सेना की एक टुकड़ी ने उन्हें पकड़ लिया और कारावास में डाल दिया। उन्हें ही नहीं, उनके समस्त परिवार को यहां गांव से उठवा लिया और सभी को कारागार में डाल दिया। औरंगज़ेब ने उन्हें राजद्रोही की संज्ञा दी और इस अपराध में उन्हें उनके परिवार सहित मृत्यु दंड की घोषणा कर दी। इस वीर सैनिक को अपनी मृत्यु दंड की चिंता नहीं थी लेकिन निरपराध परिवार को मृत्यु दंड की घोषणा से वह बहुत विचलित थे। तभी कारागार में औरंगज़ेब का एक काज़ी उनसे मिलने आया और उसने परामर्श दिया कि यदि वह और उनका समस्त परिवार इस्लाम धर्म अपना ले तो वह उन्हें एवं उनके समस्त परिवार को मृत्युदंड से क्षमा करने की बादशाह से प्रार्थना कर सकते हैं। ग्लानि उन्हें अवश्य हुई, लेकिन परिवार तो सभी को प्रिय होता हैं न! अपने परिवार को बचाने का और कोई साधन न देख, उन्होंने परिवार सहित इस्लाम धर्म अपनाने की स्वीकृति दे दी, और इस तरह उनका परिवार मुसलमान बन गया। कारागार से निकलने के पश्चात अपने परिवार को उन्होंने गांव में यह कहकर भेज दिया कि वह शीघ्र ही गांव में उनके साथ सम्मिलित होंगे। लेकिन संभवतः समाज में बहिष्कृत होने के डर से अथवा ग्लानिवश, वह गांव कभी नहीं आए। कहते हैं कि उन्होंने आत्महत्या कर ली। जहां शफी रहते हैं, यह घर उनके पूर्वजों का है। इस्लाम धर्म स्वीकार करने के पश्चात उनके परिवार को सम्राट का आश्रय मिलने के कारण किसी का साहस उनसे मोहल्ला छोड़ने को आदेश देना का

नहीं हुआ। अतः उनका परिवार अपने पूर्वजों के घर ही रहा। इसी कारण शफी का घर ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के मोहल्ले में ही है।'

' दादा जी, मैं जानता हूँ कि आपका शफी चाचा और आइशा चाची के प्रति अत्यंत स्नेह है। आप उन्हें अपने पुत्र एवं पुत्रीवत ही प्रेम करते हैं। क्या इसका कोई विशेष कारण है अथवा आपका सर्व जन जाति के प्रति मानवता की दृष्टि? एक बात और मेरे मष्तिष्क में सदैव घूमती रही है। शफी चाचा तो बड़े ही साधारण तरह से रहते हैं, लेकिन आइशा चाची तो सदैव अलंकृत नई नई वेश भूषा में श्रृंगार सहित ही दिखाई देती हैं। उन्हें देख यह कोई नहीं कह सकता कि वह साधारण कृषक कर्मी शफी की पत्नी हो सकती हैं। उन्हें श्रृंगार और आभूषणों से इतना प्रेम क्यों है?', फिर पूछा यतिन ने।

'पुत्र, शफी एवं आइशा का प्रेम विवाह हुआ था। यह उस समय की बात है जब शफी के पिता परवेज़ पहासू के नवाब के यहां उनके राजस्व विभाग में नौकरी करते थे। परवेज़ स्वयं तो पहासू में रहते थे, लेकिन उनका परिवार यहीं गांव में रहता था। परवेज़ शफी को शिक्षा दिलाना चाहते थे, लेकिन शफी का मन कभी पढ़ने लिखने में नहीं लगा। उस समय गांव में तो पढ़ाई की कोई अधिक व्यवस्था थी नहीं, इसलिए वह उसे पहासू भी ले गए। लेकिन शफी पिता से छुपकर और बिना बताए गांव भाग आता था। जब शफी वयस्क हो गया तो पिता ने सोचा कि इसे भी नवाब की सेवा में लगा दिया जाए, अतः वह इसे अपने साथ पहासू ले गए। वहां उन्हें नवाब साहेब के एक प्रबंधक मुख्तार के गृह सहायक का कार्य दिला दिया। शफी अति सुन्दर बलिष्ठ युवक था। पहासू नवाब के इस प्रबंधक मुख्तार की पुत्री आइशा का शफी पर दिल आ गया। आइशा एक संभ्रांत परिवार में बड़े ही लाड़ प्यार से पली कन्या थी। उसके वह सभी शौक थे जो एक संभ्रांत परिवार की नारी के हो सकते हैं। आइशा ने अपने पिता मुख्तार से हठ पकड़ ली कि वह विवाह करेगी तो शफी से ही। पिता ने बहुत समझाने का प्रयास किया। समझाया, शफी एक अनपढ़ युवक है। संभवतः जीवन में कुछ ऐसा न कर पाए जो आइशा को प्रसन्न रख सके। लेकिन किशोर अवस्था का प्रेम यह सब कहाँ समझता है? हारकर आइशा के पिता मुख्तार ने शफी के पिता से उसके निकाह (विवाह) की बात कही। शफी को एवं उसके पिता परवेज़ को कोई आपत्ति क्यों हो सकती थी? शफी एवं आइशा का निकाह हो गया। आइशा के पिता मुख्तार ने पहासू नवाब के यहां ही शफी को एक अच्छी नौकरी दिलवा दी।'

‘आइशा के पिता मुख्तार से मेरी भी अच्छी मित्रता थी। हमारी ज़मींदारी पहासू नवाब के अन्तर्गत ही आती थी, अतः राजस्व का नवाबी भाग देने मुझे अक्सर पहासू जाना पड़ता था। चूँकि मुख्तार ही नवाब की ओर से हमारी ज़मींदारी का हिसाब किताब देखने को नियुक्त लिपिक था, अतः मेरा उससे सम्बन्ध स्वाभाविक था। मुख्तार के पिता लखनऊ नवाब के कर्मी थे। अतः उसका बचपन लखनऊ की मुस्लिम संस्कृति में व्यतीत हुआ था। हमारे प्रति मुख्तार का स्वभाव बड़ा ही नम्र और आदरपूर्वक था। उसके व्यवहार एवं प्रेम ने मेरा दिल जीत रखा था। अन्य अधिकतर ज़मींदार तो क्षत्रिय (ठाकुर) जाति से थे, संभवतः मैं ही एक ब्राह्मण था। ब्राह्मण होने के कारण मेरा वह विशेष सम्मान करता था। यद्यपि वह जानता था कि ब्राह्मण होने के कारण मैं उसके गृह भोज तो नहीं करूंगा, परन्तु वह मुझे अपने प्रेमवश घर आकर अपने पुत्र और पुत्रीओं को आशीर्वाद देने के लिए विवश करता था। उसके प्रेम के कारण मैं सदैव जब भी पहासू जाता था तब उसके गृह अवश्य जाता था। मैं आइशा पुत्री को तब से जानता था जब उसने चलना भी नहीं सीखा था। बड़ी प्यारी बच्ची थी। मेरे चरणों से लिपट आदाब करती थी। तभी से मुझे उससे विशेषकर प्रेम हो गया और मैं उसे अपनी पुत्रीवत ही प्रेम करने लगा।‘

‘समय ठीक प्रकार से व्यतीत हो ही रहा था कि अंग्रेज़ों ने भारत को स्वतन्त्रता दे दी और नए भारत के संविधान ने सभी राजाओं, महाराजाओं और नवाबों के अधिकार छीन राजस्व प्रथा अपने हाथ में ले ली। नवाबों के अधिकतर सेवक निरुद्य हो गए। शफी भी निरुद्यम हो गया। बेचारा शफी आइशा को लेकर गांव आ गया। अब अधिक पढ़ा लिखा तो था नहीं, कृषि भूमि भी कोई अधिक नहीं थी, घर का खर्चा ठीक से चलता नहीं था। एक दिन मेरे पास आया और अपनी व्यथा सुनाई। मैंने तब उसे अपने कृषि कर्मी के रूप में नौकरी दे दी। आइशा को नवाब की ओर से उसके पिता की मृत्यु पश्चात कुछ मासिक वृत्ति मिलना प्रारम्भ हो गई। अब आइशा है तो एक संभ्रांत परिवार की बेटी ही न, और उसके सभी शौक भी उसी प्रकार हैं। लेकिन वह इसके लिए शफी से कोई पैसा नहीं लेती। हाँ, अपनी मासिक वृत्ति को अपनी इच्छानुसार अपने शौक पूरे करने में अवश्य लगाती है। शफी और आइशा में गहन प्रेम है। शफी कभी आइशा से नहीं पूछता कि तुम अपना पैसा इन अलंकारों एवं शौक पूर्ती में क्यों खर्च करती हो? वह तो बस आइशा के प्रेम के उपकार तले दबा है। आइशा भी बहुत अच्छी बच्ची है। कभी शफी से कोई शिकायत नहीं करती। इस निर्धनता में भी बड़े

प्रेम से रहती है। हाँ, अपने आपको अलंकृत अवश्य रखती है,' दादा ने शफी और आइशा की प्रेम कहानी विस्तारपूर्वक बताई।

उस रात्रि दादा जी का शफी चाचा और आइशा चाची के प्रति प्रेम और दादा जी की मृत्यु के पश्चात इन दोनों का अपने प्रति प्रेम की बातें सोचते सोचते यतिन सो गया।

इन स्मृतियों का क्रम सलंग्न रहा। अगली रात्रि को जब वह बिस्तर पर लेटा तो फिर दादा जी की दूसरी मधुर स्मृति उसके मष्तिष्क में घूमने लगी।

दादा जी को वैसे तो क्रोध बहुत कम आता था जैसे उन्होंने क्रोध पर विजय ही पा ली हो, पर हाँ, जब क्रोध आता था तो भगवान् ही सुधि लें। दादा जी के लाड़ प्यार ने यतिन को हठी बना दिया था। अपने हठ की पूर्ती के लिए कभी कभी वह सीमाएं लांघ जाता था। अधिकतर तो दादा जी उसके हठ को पूर्ण करने का प्रयास करते, लेकिन जब बात सर से ऊपर निकल जाती तो अवश्य उन्हें क्रोध भी आ जाता था। अब शीतलमय चन्दन की लकड़ी को कोई बार बार तीव्र गति से घर्षण करेगा तो उसमें से अग्नि तो प्रकट होगी ही न? जब यतिन की हठ पूर्ण न होती तो उसे दादा जी को क्रोध दिलाने में अत्यंत आनंद का अनुंभव होता था। एक दिन की बात है। उस दिन यतिन बहुत देर तक सोता रहा। दादा जी उसके बिस्तर के समीप आए और बोले, 'यतिन बेटा, देखो सूर्य देव कितना चढ़ आए हैं, और तुम अभी तक सो रहे हो। क्या गायों को चरवाहे के झुण्ड में छोड़ने नहीं जाना?'

दादा जी के पास दो गायें और दो बैल थे। बैलों की देखभाल तो कृषि कर्मी शफी चाचा और नत्थी करते थे, परन्तु गायों की देखभाल दादा जी स्वयं ही करते थे। यतिन इसमें यथा संभव दादा जी की मदद अवश्य करता था। ये दो गायें माँ-बेटी थीं। इन दोनों गायों से यतिन को भी अत्यंत प्रेम था। प्रतिदिन गायें प्रातः से सांय तक चरवाहे के साथ जंगल में स्वतंत्र विचरण करती हुए घास का आहार करतीं थीं, और सांय को घर लौट आती थीं। प्रातः गायों को चरवाहे के झुण्ड में छोड़ना अनिवार्य था, लेकिन सांय को स्वयं ही वह अपने घर लौट आती थीं। धन्य है गौ माता का ज्ञान एवं स्मरण शक्ति जिन्हें अपने घर का पूर्ण बोध रहता था और सांय को लौटते हुए कोई त्रुटि नहीं होती थी। प्रतिदिन प्रातः इन गायों को चरवाहे के झुण्ड में छोड़ने का उत्तरदायित्व यतिन का था। गायों के सांय गृह लौटने पर यतिन उन दोनों का चारा पका हुआ ज्वार

एवं सरसों की खली से सानी लगा कर उन्हें प्रेम से सहलाता हुआ भोजन करने की प्रार्थना करता था। जब दुग्ध दुहने का समय आता तो तुरंत कलश लेकर उनका दुग्ध दुहने बैठ जाता और कभी कभी तो दुहा हुआ कच्चा दूध वहीं पी जाता था। दादा जी तब डांट अवश्य लगाते थे। दुग्ध को उबालकर ही पीना चाहिए। कच्चा दूध स्वास्थय के लिए हानिकारक हो सकता है, यह शिक्षा देते रहते थे। परन्तु यतिन को न जाने क्यों गाय के बछड़े की तरह ही दुहा हुआ कच्चा दूध पीना अच्छा लगता था।

'हाँ, दादा जी अभी जाता हूँ,' यह कहकर तुरंत बिस्तर से उठ गया यतिन। हाथ मुँह धो यतिन गायों को चरवाहे के पास छोड़ने चला गया। जब लौट कर आया तो विद्यालय के लिए देर हो रही थी। अतः बिना नहाए और नास्ता किए शीघ्र ही विद्यालय परिधान धारण कर विद्यालय को जाने ही वाला था कि दादा जी का स्वर सुनाई दिया। 'तुम्हें कितनी बार समझाया है कि चरवाहे से वापस लौटने पर स्वच्छता के लिए नहाना आवश्यक है। तुम बिना शुद्ध हुए, बिना नास्ता किए विद्यालय जाने को तत्पर हो? जाओ पहले नहाओ फिर नास्ता करो, तभी तुम विद्यालय जा सकते हो,' दादा जी अधिकारमय स्वर में बोले। न जाने यतिन को क्या हुआ, उसने दादा जी की आज्ञा को अनसुना कर दिया और बढ़ने लगा विद्यालय की ओर। दादा जी अब उसके समक्ष आ गए। 'मैंने कहा न कि तुम बिना नहाए और नास्ता किए नहीं जा सकते। जाओ पहले नहाओ,' बोले दादा जी। यतिन को भी हठ हो गई। 'मैं नहीं नहाऊंगा, नहीं नहाऊंगा, नहीं नहाऊंगा, और ऐसे ही विद्यालय जाऊँगा', आवेश में बोला यतिन। 'अच्छा, तुम्हें गन्दगी में ही रहना पसंद है तो थोड़ा सा गोबर और लपेट लो', थोड़ी क्रोधित मुद्रा में बोले दादा जी। आवेश में बस गोबर लपेट लिया यतिन ने और चल दिया गृह से बाहर की ओर। दादा जी अब यह सहन नहीं कर सके। क्रोध में आ गए। अपनी छड़ी उठाई और मार दीं दो छड़ी यतिन को। यतिन स्तब्ध। उसे जैसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि दादा जी कभी उसे पीट भी सकते हैं। चुपचाप नहाने चला गया। नहाकर दादा जी के पास आ क्षमा याचना करने लगा। यतिन के उदास चहरे को देखकर दादा जी की अचानक हंसी छूट पड़ी। पास बुलाया, प्रेम से समझाया। 'बेटा जीवन में स्वच्छता का अत्यंत महत्व है। स्वच्छ रहोगे तो अधिकतर बीमारियां दूर रहेंगी, मन प्रसन्न रहेगा, और कार्य को लगन से कर पाओगे। मनुष्य में बीमारी के कारण कई हो सकते हैं, लेकिन अधिकतर मनुष्य जब जब स्वच्छता का पूर्ण ध्यान नहीं रखता तब तब वह विषैले जीवाणुओं और विषाणुओं से लिप्त हो जाता है, और अगर मृत्यु को प्राप्त न भी हो तो कष्टदायक जीवन अवश्य बिताता है,' समझाया दादा

जी ने। आज जब विश्व कोविड की महामारी के संक्रमण से संलिप्त है, तो दादा जी के इस कथन की यथार्थता समझी जा सकती है।

दादा जी बड़े ही कर्तव्यनिष्ठ, सत्यनिष्ठ एवं मातृ भक्त थे। प्रातः उठते ही सर्व प्रथम माँ के चित्र को प्रणाम करने के पश्चात ही उनकी दिनचर्या प्रारम्भ होती थी। सुना था कि उनके पिता को भगवान् ने पूर्ण आयु होने से पूर्व ही अपने पास बुला लिया था। संतों के मुख से सुनता आया हूँ कि अच्छे लोगों की भगवान् को भी बड़ी आवश्यकता रहती है। अब देखिये, स्वामी श्री विवेकानंद जी अपना ४०वाँ वर्ष भी पूर्ण नहीं कर पाए थे कि भगवान् ने उन्हें बुला लिया। स्वामी रामतीर्थ जी ३२वें वर्ष में ईश्वर को प्रिय हो गए। आदि-गुरु श्री शंकराचार्य जी को भी भगवान् ने ३२वें वर्ष में ही बुला लिया था। कोई आश्चर्य नहीं कि मेरे परदादा भी ईश्वर को कम आयु में ही प्रिय हो गए थे। बड़ी कहानियां सुनी हैं उनके बारे में। उनकी समाजसेवी प्रवृती, दयालुता एवं दानता की एक कथा समाज में अत्यंत प्रचलित है।

सन १९०० के भयानक अकाल का समय था। पश्चिम और मध्य भारत में गर्मियों के मानसून की विफलता के साथ यह सूखा प्रारम्भ हुआ था। उस समय अकाल ने ४७६,००० वर्ग मील के क्षेत्र में लगभग ६ करोड़ की आबादी को प्रभावित किया था। राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में यह अकाल विकराल रूप धारण कर चुका था। इसकी अत्यंत गंभीरता का अनुमान इस से लगाया जा सकता है कि लोगों के मरने का आंकड़ा ३८ मौतें प्रति १,००० की आबादी तक पहुँच चुका था। भारत में १० लाख लोग इस अकाल से अन्न के अभाव में भुखमरी से मर चुके थे। दादा जी का परिवार एक मारवाड़ी ब्राह्मण था और मारवाड़ उनके पूर्वजों की भूमि। अपने पूर्वजों की भूमि में मचे इस हाहाकार को यतिन के परदादा सहन नहीं कर सके और अपनी पूर्ण सामर्थ्य के साथ पहुँच गए राजस्थान। अजमेर को अपना कर्म क्षेत्र बनाया, और एक मित्रों की टोली बना कर दिन रात निर्धन और भूख से तड़पते हुए लोगों की सेवा में लग गए। लगभग अपना समस्त धन पूर्ण ऊर्जा के साथ उन्होंने इस अकाल से प्रभावित निर्धन लोगों के भरण पोषण में लगा दिया। ऐसा समाजसेवी व्यक्तित्व था यतिन के परदादा का। जब हर ओर शांति स्थापित हो गई और सरकारी मदद आने लगी, तभी वह अजमेर से गांव वापस लौटे। कहते हैं लगभग छै मास तक रहे वह वहां।

तो हाँ, हम बात कर रहे थे यतिन के दादा जी के व्यक्तित्व की। पढ़ाई में वह विश्वविद्यालय तो नहीं पहुँच पाए थे लेकिन उच्चतर माध्यमिक की औपचारिक शिक्षा भली भांति सफलता पूर्वक पाई थी। इतनी शिक्षा ही उस समय उच्च शिक्षा में गिनी जाती थी। इसके साथ ही उनके पिता जी (यतिन के परदादा) संस्कृत के आचार्य थे। उन्होंने दादा जी को संस्कृत भाषा एवं व्याकरण का पूर्ण ज्ञान दिया था। दादा जी सरकारी नौकरी करना चाहते थे। पिता एक ज़मींदार थे, अतः राजस्व विभाग में रूचि होना स्वाभाविक था। पिता की अनुमति से एवं पहासू नवाब के प्रोत्साहन से शीघ्र ही उन्हें नायब तहसीलदार का पद मिल गया। यह वह समय था जब एक भारतीय के लिए नायब तहसीलदार एक उच्च पद माना जाता था। इससे अधिक उच्च पद, तहसीलदार अथवा जनपद अधिकारी आदि सामान्यतः अंग्रेज़ों के लिए सुरक्षित थे। तहसीलदार की अधीनता में नायब तहसीलदार का मुख्य कार्य अपनी तहसील में अंग्रेज़ सरकार के लिए उन किसानों अथवा छोटे रजवाड़ों से राजस्व एकत्रित करने का होता था जो अंग्रेज़ सरकार द्वारा नियुक्त नवाब अथवा राजा, महाराजाओं की सीमाओं से परे होते थे।

दादा जी अपनी कर्मनिष्ठा, ईमानदारी एवं अभिमान रहित सरल जीवन के लिए अपने समकक्षीयों में एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किए जाते थे। एक बार की बड़ी रोचक घटना है। दादा जी को तहसील में कार्यभार सम्हाले हुए अभी कुछ समय ही बीता होगा कि उन्हें एक अत्यंत आवयश्यक दौरे पर तहसील के दूसरे कस्बे में जाने का आदेश हुआ। यह वह समय था जब अधिकारीगण दौरों के लिए सरकार द्वारा नियुक्त सरकारी घोड़ा तांगे का प्रयोग करते थे। अभाग्यवश उस समय सरकारी घोड़ा तांगा अन्यत्र किन्ही दूसरे अधिकारी की सेवा में था। इतना समय नहीं था कि उस घोड़ा तांगे के लौटने की प्रतीक्षा की जा सके। अतः दादा जी तहसील के व्यवसायिक घोड़ा तांगा स्टैंड पर पहुँच गए और अपने गंतव्य स्थान पर जाने वाले एक घोड़ा तांगे में बैठ गए। तांगे वाला उस तांगे में सवारीओं को ठूंस ठूंस कर भरे जा रहा था। तांगे में उपलब्ध स्थानों के भर जाने पर भी वह और सवारीओं को आमंत्रित करता चला जा रहा था। दादा जी दुबले पतले शरीर के व्यक्ति थे, एक कोने में दब कर रह गए। सांस लेना भी दूभर हो रहा था। धीमे मृदुल स्वर में तांगे वाले से बोले, 'अरे भैया, थोड़ा घोड़े का और तांगे में बैठी सवारीओं का कुछ तो ध्यान करो। तुम सवारी पर सवारी भरते चले जा रहे हो, और यहां सांस लेने की भी जगह नहीं है।' बस इतना ही सुनना था कि तांगे वाले को ताव आ गया। कर्कश स्वर में बोला, 'अरे ओ छँछूदरीए, लगता है

दो चार पैसे महावार क्या कमाने लगा कि इतना नाज़ुक बन गया। बड़ा घमंड हो गया है। धनी बाप की औलाद है तो अपना तांगा ही क्यों नहीं खरीद लेता?' उसके प्रत्युत्तर में दादा जी फिर मृदु भाषा में उस तांगे वाले से बोले, 'अरे भैया, लगता है संभवतः तुम ठीक ही कह रहो हो, लेकिन हाँ, दो चार पैसे महावार से कुछ अधिक ही कमा लेता हूँ। 'ओह देखो इस धनवान को। ऐसे बोल रहा है जैसे दो चार पैसे नहीं, दो चार रुपये महावार कमा लेता हो', फिर उसी कर्कश स्वर में बोला तांगे वाला। 'हाँ भैया, तुम ठीक ही कहते हो, परन्तु दो चार रुपये महावार से भी कुछ अधिक ही कमा लेता हूँ', फिर बोले दादा जी। 'अरे सब देखो तो हमारे तांगे में दस रुपये महावार कमाने वाला लल्ला बैठा है,' व्यंग्य से फिर उसी कर्कश स्वर में बोला तांगे वाला। 'अब भैया तुम पैसे कमाने की बात ही करते हो तो हाँ दस रुपये महावार से भी अधिक ही कमा लेता हूँ,' बोले दादा जी। अब तो तांगे वाले को और अधिक ताव आ गया और बोला, 'धन्य भाग्य हमारे, देखो नायब बैठे हैं हमारे तांगे में। इनकी आरती उतारो।' जिस समय यह वाद-विवाद चल रहा था उस समय तहसील का एक अन्य कर्मचारी छुट्टी पर अपने गांव जाने के लिए तांगा स्टैंड पर आया हुआ था। उसने नायब तहसीलदार का स्वर पहचान लिया और तुरंत दौड़ कर चरण स्पर्श किया। ब्राह्मण नायब तहसीलदार को सब तहसील के कर्मचारी 'पंडित जी' कह सम्बोधित करते थे तथा आदर से उनके चरण छूते थे। 'पंडित जी, आप तांगे में? सब कुशल तो है?', बोला कर्मचारी। तांगे वाले को डांटते हुए स्वर में बोला, 'जानते हो, यह कौन हैं? नायब हैं, नायब? अभी तुम्हें कारागार में बंद कर तुम्हारी सभी हेकड़ी भुला देंगे। चला है करने वाद-विवाद पंडित जी से', यह कह कर कसकर एक तमांचा उसके गाल पर जड़ दिया। तांगे वाले को काटो तो खून नहीं। सभी सवारीओं को तुरंत उतारा और चरणों पर पड़कर क्षमा माँगने लगा। दादा जी ने उसे उठाया और कहा, 'यह छोड़ो, शीघ्रता करो। मुझे इस कस्बे में शीघ्र पहुँचना है। उपलब्ध स्थानों पर सवारीओं को बिठाओ और तुरंत चलो।' पर तांगे वाला अब और सवारीओं को बिठाने को तैयार ही नहीं था। तुरंत तांगा हाँक दिया उस कस्बे की ओर। दादा जी के गंतव्य स्थान पहुंचने पर हाथ जोड़ खड़ा हो गया और बोला, 'सरकार, मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगा। आप काम समाप्त कर आएं, मैं ही आपको वापस तहसील ले चलूँगा। दादा जी ने उस से बहुत कहा कि पता नहीं कितना समय लगे मुझे कार्य समाप्त करने में, तुम्हें अपनी रोज़ी रोटी कमाने का पूर्ण अधिकार है। मेरी प्रतीक्षा में समय नहीं गंवाओ। लेकिन तांगे वाला तो नायब को अपने तांगे में बिठाकर धन्य हो रहा था। बोला, 'हुज़ूर, आप मेरी चिंता न करें। रोज़ी रोटी तो मैं प्रतिदिन ही कमाता हूँ, परन्तु सरकार की सेवा करने का अवसर

फिर कब मिलेगा?' प्रतीक्षा करता रहा जब तक नायब कार्य समाप्त कर वापस नहीं आ गए। वापस आने पर नायब ने उसे पूरे उपलब्ध स्थानों की सवारीओं के समकक्ष आने जाने का भुगतान किया। तांगे वाला पैसे लेने को तैयार ही नहीं था, परन्तु नायब साहेब ने उसको बाध्य कर पैसा दिया। ऐसे व्यक्तित्व के थे दादा जी। लालचपन के वह अवश्य विरोध में थे, परन्तु ईमानदारी से की कमाई को कभी रोकने वाले नहीं थे।

नायब की नौकरी के कुछ वर्ष ही बीते होंगे कि पिता की मृत्यु का दुःखद समाचार मिला। माता का आदेश भी आया, 'तुरंत नौकरी छोड़ गांव को प्रस्थान करो, और ज़मींदारी का कार्यभार सम्हालो। अब घर में तुम्हीं सबसे बड़े हो, अतः बड़े होने का उत्तरदायित्व सम्हालो। तुम्हारा छोटा भाई अभी आयु में बहुत छोटा है और पढ़ना चाहता है। उसकी पढ़ाई का प्रबंध भी करो।' अब माता की आज्ञा एक मातृ-भक्त कैसे टाल सकता है? तुरंत नौकरी से त्यागपत्र दिया और चल दिए गांव को। तहसीलदार साहेब ने बहुत समझाने का प्रयास किया, 'बहुत ही उज्जवल भविष्य है तुम्हारा इस नौकरी में। जिस निष्ठा, ईमानदारी और लगन से तुम कार्य कर रहो, जनपद अधिकारी के पद पर भी एक दिन पहुँच सकते हो।' परन्तु माता की आज्ञा तो दादा जी के किए भीष्म आदेश था।

गांव आकर ज़मींदारी और खेतीबाड़ी सम्हाली। समय बीतता गया। भारत को स्वतन्त्रता मिल गई। स्वतन्त्रता के पश्चात ज़मींदारीयां समाप्त हो गईं। तब वह अपनी खेती बाड़ी सम्हालने लगे। भगवान् में उनकी बड़ी आस्था थी। प्रवचन करना, श्री राम कथा करना कराना इत्यादि भी उनके जीवन के भाग बन गए। दोनों पुत्र विवाहित होकर अपने अपने कार्य में लगे हुए थे। वह स्वयं गांव में ही अपना जीवन अपने पौत्र यतिन के साथ बिताने लगे। कई बार पुत्रों ने प्रयास किया कि वह उनके पास रहें, पर दादा जी का मन कहीं और लगता ही नहीं था अथवा कहूँ कि उन्हें कहीं भी आत्म-सम्मान की अनुभूति नहीं होती थी। बड़े पुत्र, यतिन के पिता, विधुर थे। उनके पास रहना तो संभव नहीं था। किसी प्रकार वह ही अपना जीवन-यापन कर रहे थे, फिर वृद्ध पिता का साथ में बोझ कैसे उठाते? और वह भी कर्म कांडी ब्राह्मण पिता का! छोटे पुत्र की बहू दादा जी को बिलकुल ही पसंद नहीं करती थी। दादा जी की उपस्थिति से ही उन्हें बुखार आना शुरू हो जाता था। ऐसे में वह छोटे पुत्र के पास कैसे जाते?

छोटी बहू का दादा जी के प्रति रूखे व्यवहार का भी एक कारण था। अब बिना अग्नि के धुँआ तो होता नहीं है। शादी होने के प्रथम सप्ताह में ही जो उन्हें दादा जी के हांथों अपमान का घूंठ पीना पड़ा, वह चाहकर भी उसे नहीं भुला पातीं थी।

दादा जी अवश्य ही जैसा उपरोक्त कथित है, बड़े ही कर्तव्यनिष्ठ, आदर्शवादी, संस्कृत के पंडित, सत्यवादी एवं ज़मींदारी के एक अच्छे प्रबंधक थे। परन्तु महाज्ञानी होने पर भी संभवतः उन्होंने **'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्। प्रियं च नानृतम् ब्रूयात्, एष धर्मः सनातनः॥**' (अर्थात सत्य बोलना चाहिये, प्रिय सत्य बोलना चाहिये। अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये। प्रिय किन्तु असत्य नहीं बोलना चाहिये। यही सनातन धर्म है) को अपने जीवन में पूर्ण रूप से चरितार्थ नहीं किया था।

दादा जी सत्यवादी अवश्य थे। जीवन में मुझे स्मरण नहीं कभी उन्होंने असत्य बोला हो। लेकिन सत्य बोलते समय अगर मैं कहूँ कि वह कड़वा सत्य बोलने में भी हिचकते नहीं थे, तो यह अतिश्योक्ति नहीं होगी।
अब आप स्वयं ही सोचिए। छोटे पुत्र का विवाह हुआ है। नव-नवेली पुत्र वधू के घर में आगमन हुए कुछ ही दिन बीते हैं। पुत्र-वधू के लगातार खांसने से वह कुछ अस्वस्थ लगती हैं। दादा जी ने तुरंत अपने पुत्र को आदेश दिया, पुत्र-वधू को वैद्य जी के पास ले जाने का। वैद्य जी पारवारिक मित्र थे। उन्होंने पुत्र-वधू के स्वास्थ्य की पूर्ण प्रकार से जांच पड़ताल की। उनका माथा ठनका। यह तो यक्ष्मा (टी बी) से पीड़ित लगती हैं। पुत्र-वधू से तो कुछ नहीं बोले, कुछ ओषधियाँ दे दीं। औषधालय में समस्त रोगियों के देखने के उपरान्त अपने मित्र यतिन के दादा जी के पास तुरंत पहुँच गए। अपनी आशंका जताई और परामर्श दिया, शहर के किसी बड़े चिकित्सक से सलाह मशवरा करने का। दादा जी को भी शक तो अवश्य हो रहा था, बस उसकी पुष्टि वैद्य जी ने कर दी। वैद्य जी के जाने के बाद अपने आपको संयमित नहीं रख पाए। पुत्र को बुलाया और कहा, 'तुम्हारी पत्नी यक्ष्मा से पीड़ित है। इससे शारीरिक मिलन का प्रयास नहीं करना। तुरंत इसको शहर के बड़े अस्पताल में ले जाओ।' यहां तक तो संभवतः ठीक था। इसके साथ ही स्वयं ही एक अन्य निष्कर्ष पर पहुँच क्रोध से ऊंचे स्वर में बोलने लगे, 'यह संभव नहीं है कि इसके पिता को इसके यक्ष्मा के बारे में न पता हो। ऐसे में उन्हें अपनी लड़की का विवाह न कर उसकी चिकित्सा पर ध्यान देना चाहिए था।' पुत्र-वधू ने सब सुन लिया। वह किंकर्तव्यविमूढ़! उन्हें बड़े अस्पताल ले जाया गया। नवीन यंत्रों से यक्ष्मा की पुष्टि हुई। उनकी संभवतः एक वर्ष से भी अधिक समय तक

चिकित्सा चली और पूर्णतः स्वास्थ्य हो गईं। परन्तु दादा जी के लगाए अपने पिता के प्रति इस आरोप को वह सहन नहीं कर पाईं और उनके मन में दादा जी के प्रति विमुखता की भावना जाग्रत हो गई। शास्त्रों में वर्णित है कि भावना को छिपाना बड़ा ही कठिन कार्य है। प्रत्यक्ष में तो वह दादा जी से अपनी अमैत्रिक भावनाओं को प्रगट कभी नहीं कर पाईं, लेकिन उन्होंने इसके लिए दादा जी को कभी क्षमा नहीं किया। अब दादा जी ने भी तो दुनिया देखी थी। कितना भी वह इस दुर्विध भावना को छिपाने का प्रयास करतीं, दादा जी भांप ही गए। दादा जी का भी स्वाभिमान देखिए, उन्होंने भी कभी अपने इन अप्रिय सत्य शब्दों पर खेद व्यक्त नहीं किया।

पुत्र-वधू ने इस घटना के पश्चात हर संभव प्रयास किया कि दादा जी से फिर कभी उसका मिलन न हो। पति को आदेश दे रखा था कि वह दादा जी को उसके घर शहर में कभी न लाएं और वह स्वयं भी कभी गांव नहीं जातीं। कोई विशेष उत्सव अथवा दुःखद घटना पर जाना भी पड़ा तो उन्हें गांव पहुंचते ही बुखार आ जाता था। एक कमरे में अकेले पड़े हुए अस्वस्थ होकर अपनी औषधियां लेती रहतीं।

दादा जी के पुत्र अपने पिता के प्रति पत्नी के इस व्यवहार से आहत अवश्य थे, लेकिन पत्नी के आगे विवश थे। इस घटना को कोई १५-१६ वर्ष बीत गए होंगे तब उन्होंने सोचा कि कहावत है 'समय के साथ साथ धीरे धीरे घाव भर जाते हैं', अवश्य ही मेरी पत्नी का अब दादा जी के प्रति क्रोध शांत हो गया होगा। पिता की बड़ी प्रार्थना की, और उन्हें कुछ दिन अपने साथ बिताने के लिए मना लिया। अब पिता का पुत्र के प्रति कोमल हृदय ही तो था, मान गए। उन्होंने भी संभवतः यह सोच लिया कि अब इतनी पुरानी बात को बहू कोई हृदय में सदैव के लिए बिठाए थोड़े रक्खे होगी? पिता पुत्र के गृह आ गए। ससुर को अपने गृह देख प्रत्यक्ष में तो कुछ नहीं बोलीं, परन्तु अपने पति को क्रोधित नेत्रों से निहारा। पिता ताड़ गए कि मनमुटाव अभी दूर नहीं हुआ। सोचा, चलो अब आ गए हैं तो कुछ दिन रह ही जाते हैं। लेकिन एक दिन ऐसी घटना हुई कि पिता अपने को संयमित नहीं रख पाए। तुरंत अपना बक्सा सम्हाला, और बिना किसी से कुछ कहे अपने गांव आ गए।

पुत्र किसी कार्यालय कार्यवस शहर से बाहर गए हुए थे। पुत्र-वधू को संभवतः यह एक अच्छा अवसर मिल गया अपनी अप्रसन्नता ससुर के प्रति जताने का। दोपहर के भोजन में लहसुन प्याज से युक्त अत्यंत स्वादिष्ट भिंडी की तरकारी बनाई। पुत्र-वधू

को चटपटा खाना, विशेषकर प्याज और लहसुन के साथ, खाने में बड़ी रूचि थी। अब ससुर जी कर्मकांडी ब्राह्मण, संस्कृत एवं शास्त्रों के ज्ञाता, धर्मानुयायी। प्याज और लहसुन को खाना तो दूर, हाथ लगाने में भी पाप समझते थे। जब भिंडी की तरकारी परोसी गई तो प्याज लहसुन दिखाई तो नहीं दे रही थी परन्तु उन्होंने गंध से तुरंत अनुमान लगा लिया कि इसमें प्याज और लहसुन पड़ा है। पुत्र-वधू भी कोई कम चतुर नहीं थी। उसने जान बूझकर प्याज और लहसुन निकालकर ही तरकारी दी थी। ससुर जी बोले, 'बहू, तुम जानती हो हम प्याज लहसुन नहीं खाते फिर हमें यह प्याज लहसुन की तरकारी क्यों परोसी?' बहू खिलखिलाई हुए हंसी और बोली, 'पिताजी, इसमें प्याज लहसुन कहाँ है? मैंने तरकारी में प्याज लहसुन डाली अवश्य थी लेकिन आपको तो निकाल कर दी है न? इसमें रुष्ट होने की क्या बात है?'

दादा जी ने भोजन को प्रणाम किया। तुरंत बिना खाए उठे और अपने कमरे की ओर गए। अपना बक्सा उठाया और चल दिए बस स्टैंड की ओर। तुरंत गांव आ गए। उस दिन के बाद मृत्यु पर्यन्त कभी अपने छोटे पुत्र के घर नहीं गए। जीवन पर्यन्त अपने पौत्र के साथ अकेले ही रहे। कर्मकांडी ब्राह्मण होने के कारण किसी दूसरे घर की रसोई से आया भोजन ग्रहण नहीं करते थे। अतः स्वयं दोनों समय का भोज बनाते हुए अपना जीवन व्यतीत किया। ऐसे स्वाभिमानी पुरुष थे दादा जी।

दादा जी में एक अत्यंत विशेषता और थी। यद्यपि स्वयं कर्मकांडी ब्राह्मण थे परन्तु जाति पाति का भेदभाव उनमें बिलकुल नहीं था। जैसा उपरोक्त व्यक्त है, घर के दो कृषि कर्मिओं में से एक शफी चाचा मुसलमान और दूसरे नत्थी चर्मकार जाति से थे, परन्तु दोनों को वह पुत्रवत प्रेम ही करते थे। ब्रह्ममुहूर्त में उठकर नित्य कर्म से निपट जब वह अपने लिए चाय एवं नास्ता बनाते तो इन दोनों कृषि कर्मिओं को देना कभी नहीं भूलते थे। पढ़े लिखे प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण दादा जो के मित्र तो अनेक थे परन्तु उनके परम मित्रों में से एक जुलाहे थे। जुलाहे काका, बस संत कबीर के ही अवतार थे। जीवन भर अविवाहित रहे जुलाहे काका ने अपना जीवन समुदाय के उत्थान के प्रति ही समर्पित कर दिया था। यतिन को स्मरण है, बड़ा व्यस्त जीवन था उनका। चादरें बुनना, समुदाय की समस्याओं का समाधान निकालना, युवा जुलाहों का मार्ग दर्शन करना आदि आदि, फिर भी प्रति दिन सांय ४ से ५ बजे तक एक घंटे का समय निकाल अपने इस ब्राह्मण मित्र से मिलने अवश्य आते थे। बस उनके आते ही प्रारम्भ हो जाता था सत्संग। दादा जी तो जैसे आध्यात्मिक कथाओं के भण्डार थे।

यतिन को भी इस सत्संग में भाग लेने में अत्यंत आनंद का अनुभव होता था। इन्हीं कथाओं के आधार पर यतिन को पता लगा कि रामानंदी सम्प्रदाय से सम्बंधित होने के साथ दादा जी समस्त सनातन धार्मिक गुरुओं का अत्यंत सत्कार करते थे। इसके साथ ही उन्हें सूफी मत में अत्यंत श्रद्धा थी। श्री शिरडी साईं बाबा, अजमेर शरीफ के संत मोइद्दीन चिस्ती, रूड़की के संत साबरी पाक एवं दिल्ली के संत निज़ामुद्दीन के प्रति उनकी अत्यंत श्रद्धा थी तथा उनसे सम्बंधित कई कथाएं वह सुनाते रहते थे। बड़े प्रेम और रोचक तरीके से सभी सुनते थे वह कथाएं। भगवान् एवं सभी समुदाय के संतों के प्रति उनकी अटूट आस्था एवं प्रीति थी। यही शिक्षा उन्होंने यतिन को भी दी।

माँ के दर्शन और आशीर्वाद

आज यतिन ग्रीष्म ऋतू की रात्रि में घर की छत पर सोता हुआ आकाश में शून्य की ओर देखता हुआ दादा जी की याद में खोया हुआ था। संभवतः उसको लगता कि उसके दादा जी वहीं से उसे देख उसे आशीर्वाद दे रहे हैं। छोटी सी बुद्धि में सोचने की प्रक्रिया ही नहीं बंद होती थी। कभी कभी उसे लगता था कि कहीं वह पागल तो नहीं हो जाएगा?

दादा जी की मृत्यु के कुछ दोनों पश्चात चाचा जी गांव आए, प्रमुखतः कृषि कार्य प्रबंधन के लिए। उन्होंने यतिन को बहुत उदास पाया। चाचा जी एक शिक्षक थे अतः बच्चों की मनोवैज्ञानिक भावनाओं को संभवतः समझते थे। अपने समीप बिठाकर प्रेम से उदासी का कारण जानने का प्रयास करने लगे। यतिन उनके कंधे पर सर रख बिलख बिलख कर रोने लगा। संभवतः उसको अपने भाव प्रदर्शित करने का एक अवसर मिल गया। यतिन को अच्छी तरह याद है, चाचा जी ने उसे खूब रोने दिया। संभवतः बच्चे का दर्द समझा। यतिन के शांत होने पर समझाने लगे, 'पुत्र, मैं कोई दूर थोड़े ही रहता हूँ। फिर खेती बाड़ी के प्रबंधन के लिए मेरा आना जाना तो अब नियमित रूप से रहेगा। अब तू शीघ्र ही चौदह वर्ष का वयस्क हो जाएगा। जानता हूँ तू बहुत समझदार है। बस अपनी पढ़ाई पर पूरा ध्यान लगा और जीवन को आनंदमय बनाने का प्रयास कर।' इस छोटी सी आयु में ही उसे वयस्क बनाकर चाचा जी ने विदा ली।

यतिन फिर से इस बड़े पैतृक घर में अकेला हो गया। आज उसे अपनी माँ की बहुत याद आई। तभी उसे कृष्णा मौसी की भी याद आने लगी। माँ की प्रिय सहेली। उसे स्मरण है कि माँ की मृत्यु के बाद उसे शांत करने के लिए कृष्णा मौसी उसे चिपटाकर स्तन पान तक करातीं थीं। बच्चे को कृष्णा मौसी के घर जाने में भी पता नहीं क्यों अब शर्म की अनुभूति होती थी। जब से उनके पुत्र शहर से पढ़ाई कर विवाहित हो गांव में ही बस गए हैं, तब से उसे न जाने क्यों वहां हर समय जाना उचित नहीं लगता। यद्यपि मौसी, उनके पुत्र और पत्नी, सभी यतिन को बहुत प्रेम करते हैं, फिर भी वहां यतिन को अब उतनी स्वतन्त्रता का अनुभव नहीं होता। ऐसे में जब प्राणी अपने को सर्वदा असमर्थ समझता है तो बस एक ही उपाय रह जाता है उसके पास अपनी व्यथा को मिटाने का - अश्रु बहाना। बस यतिन बेचारा भी चुपके चुपके सिसकते हुए आंसू बहाता रहता था।

जून का महीना प्रारम्भ हो चुका था। इस वर्ष गर्मी की भी अति ही हो गई थी। दादा जी की मृत्यु को लगभग दो मास बीत चुके थे। विद्यालयों की गर्मीओं की छुट्टियां अभी भी चल रहीं थीं। इस बेचारे यतिन के लिए तो कोई ऐसा स्थान भी नहीं था जहां वह गर्मीओं की छुट्टियां में कुछ दिनों के लिए कहीं जा सकता। दिन में तो वह जैसे तैसे अपने आप को व्यस्त रख लेता था, या तो कृषि कर्मी शफी एवं नत्थी के साथ अथवा कृष्णा मौसी के घर अथवा कुछ विद्यालय के साथी मित्रों के साथ। कृषि कर्मी शफी से विशेषकर उसकी बड़ी अच्छी मित्रता थी, यद्यपि आयु में वह उसके पिता के बराबर थे। खरीफ की फसल बोआई की तैयारियां प्रारम्भ हो चुकीं थीं। तपती दोपहरी में जब तापमान ४० सेल्सियस से भी अधिक होता था, वह कृषि कर्मिओं के साथ बैलगाड़ीओं में घूरों से कम्पोस्ट खाद भरवा कर खेतों में डलवाने में मदद करता था। उसे खेती बाड़ी में आनंद आने लगा था। राष्ट्रकवि श्री मैथली शरण गुप्त जी की कविता जो उसने विद्यालय में पढ़ी थी, सार्थक दृष्टिगोचर होने लगी थी और उसे अक्सर गुनगुनाता रहता था।

अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे?
थोड़े में निर्वाह यहाँ है, ऐसी सुविधा और कहाँ है?
यहाँ शहर की बात नहीं है, अपनी अपनी घात नहीं है,
आडम्बर का नाम नहीं है, अनाचार का नाम नहीं है।
यहाँ गटकटे चोर नहीं है, तरह तरह के शोर नहीं है,
सीधे साधे भोले भाले, हैं ग्रामीण मनुष्य निराले।
एक दूसरे की ममता है, सबमें प्रेममयी समता है,
अपना या ईश्वर का बल है, अंतःकरण अतीव सरल है।
छोटे से मिट्टी के घर हैं, लिपे पुते हैं स्वच्छ सुघर हैं,
गोपद चिह्नित आँगन तट हैं, रक्खे एक ओर जल घट हैं।
खपरैलों पर बेलें छाईं, फूली फली हरी मन भाईं,
अतिथि कहीं जब आ जाता है, वह आतिथ्य यहाँ पाता है।
ठहराया जाता है ऐसे, कोई संबंधी हो जैसे,
अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे?

परन्तु रात्रि उसको कचोटती थी। रात्रि में उसे अकेलापन काटने को दौड़ता था। क्या करता बेचारा यतिन? चारपाई पर सुबकता रहता और तारों में दादा जी एवं माँ को ढूँढ़ने का प्रयास करता।

आज वह अभी खेतों से लौट नहा धोकर मकान की बैठक पर आकर बैठा ही था कि उसका विद्यालय का मित्र मही आ गया। दोनों मित्रों को चौपड़ खेलने में अत्यंत रूचि थी। चौपड़ बिछा दी गई और हो गए मस्त खेलने में। खेल चरम सीमा पर पहुँच ही रहा था कि तभी उन्हें डाकिया चाचा का स्वर सुनाई दिया। डाकिया चाचा पारिवारिक मित्र थे। एक समय में जब यतिन के पिता डाकखाना सम्हालते थे, तब भी वही डाकिया थे। यतिन को वह पुत्रवत ही मानते थे। यद्यपि कार्य में अत्यंत संलग्न रहते थे फिर भी यदा कदा यतिन का हाल पूछने अवश्य आते रहते थे। बच्चे ने सोचा कि डाकिया चाचा उसका हाल पूछने आये होंगे। चौपड़ का दांव लगाते लगाते अभिवादन किया। दूर से ही ‘नमस्ते चाचा’ से सम्बोधित किया और बोला, ‘चाचा एक दांव आप भी खेलो ना?’ डाकिया चाचा बोले, 'बेटा, अभी तो मैं डाक बांटने जा रहा हूँ, फिर कभी आकर खेलूंगा। तेरे चाचा का पत्र शहर से आया है, ले।‘ यतिन का खेल वहीं रुक गया। चाचा जी का पत्र? चाचा जी अभी पिछले हफ्ते ही तो यहां से गए हैं। क्या कारण हो सकता है कि उन्होंने पत्र लिखा है? उत्सुकतावश तुरंत पत्र अपने हाथ में लिया और पढ़ने लगा।

'पुत्र, शहर से आढ़ती का पत्र आया है। इस समय गैहूँ के भाव चरम सीमा पर हैं। उन्होंने सलाह दी है कि अपना गैहूँ तुरंत बेच दो। मेरी अभी अभी पदोन्नति हुई है। मैं उप-प्रधान अध्यापक बन गया हूँ। विद्यालय के कुछ गंभीर मामलों के कारण मेरा आना संभव नहीं है। तू शफी अथवा नत्थी के साथ एक बैलगाड़ी भर गैहूँ शहर ले जा, आढ़ती के पास। तू आढ़ती को जानता ही है। पिछले समय मैं तुझे जब शहर अपने साथ ले गया था, तब मिलवाया था। तुझे याद होगा। एक बैलगाड़ी गैहूँ ले जा और बेच दे। पैसे अपने पास सम्हाल कर रखना। खरीफ की बुआई प्रारम्भ होने वाली है। बीज इत्यादि के लिए पैसों की आवश्यकता होगी। जैसे ही मुझे विद्यालय से कुछ अवकास मिलेगा, मैं तुरंत गांव आऊंगा और सभी प्रबंध करूंगा', एक ही सांस में पढ़ गया पूरा पत्र यतिन।

चाचा जी का आदेश। तुरंत चौपड़ का खेल बीच में छोड़ा और वहीं से शफी चाचा को पुकारने लगा। शफी चाचा का घर और इस घर के बीच बहुत कम फासला था। शफी चाचा ने स्वर सुन लिया और बोले, ‘बेटा, अभी दस मिनट में आता हूँ।'

शफी चाचा आए। तुरंत उसने पत्र शफी चाचा को दे दिया। शफी चाचा ने नत्थी को भी सन्देश पहुंचाया। नत्थी भी आ गए। दोनों शफी चाचा और नत्थी बैलगाड़ी में गैहूँ भरने लगे। रात्री दस बजे तक गैहूँ भरे और फिर रात्रि में ही चल दिए शहर को गैहूँ बेचने। गांव से शहर पहुँचने में ८ से १० घंटे लग जाते थे। अतः अगले दिन सुबह मंडी में पहुंचने के लिए अभी रात्रि में ही निकलना आवश्यक था। शफी चाचा ने बैलगाड़ी को हांकने का भार लिया और यतिन बैलगाड़ी के पीछे के भाग में गैहूँ के ऊपर एक कोने में लेट गया। रात्रि भर बैलगाड़ी चलती रही। यतिन सो गया था। जब उसकी आँख खुली तो सुबह हो चुकी थी, और बैलगाड़ी आढ़ती की दुकान के पास पहुँच चुकी थी।

आढ़ती के आने पर तुरंत गैहूँ का भाव हुआ। आढ़ती ने पूरे पैसे यतिन को दे दिए। उस समय लगभग रुपये ६०० से भी अधिक। बड़ी रकम थी। शफी चाचा बोले, 'बेटा, इतनी रकम को लेकर बैलगाड़ी में रात्रि में जाना ठीक नहीं। तू तांगे से निकल और घर पहुँच। मैं बैलगाड़ी लेकर आता हूँ।‘

शफी चाचा ने यतिन को तांगा स्टैंड पर छोड़ा और गांव के एक तांगे में बिठा दिया। यतिन कुछ ही घंटों में गांव पहुँच गया और रुपयों को सम्हालकर अलमारी में रख दिया।

आज रात्रि को गर्मी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। यतिन ने छत पर सोने का विचार किया। कुछ बाल्टियां पानी की छत पर डालीं ताकि तपती हुई छत कुछ ठंडी हो जाए। एक चारपाई लगाई और उस पर बिस्तर बिछा सोने का प्रयास करने लगा। इतने में ही उसे अपना पास एक छाया के खड़े होने का अनुभव हुआ। तुरंत चारपाई से उठ खड़ा हुआ यतिन। घबराकर चीखने का प्रयास करने लगा पर डर के कारण मुख से चीख भी नहीं निकल रही थी। कौन है यह? पहचानने का प्रयास करने लगा। अरे, यह तो गांव का कुख्यात गुन्डा राणा है। क्या चाहता है राणा यतिन से? डरकर यतिन भागने का प्रयास करने लगा। तभी राणा ने उसे पकड़ उसके गाल पर दो चांटे

जड़ दिए। यतिन के मुख को अपने हाथों से दबाने का प्रयास करने लगा ताकि यतिन चीखे नहीं, तथा उसका हाथ मरोड़ते हुए चेतावनी देने लगा कि अगर उसने चीखने का प्रयास किया अथवा इस घटना को किसी से भी कहा तो वह उसे जान से मार डालेगा। ‘तू अभी अभी शहर से गैहूँ बेच बहुत रकम लेकर आया है। कहाँ है वह रुपया? तुरंत मुझे दे’, फुसफसाते स्वर में बोला राणा।

इस समय यतिन में न जाने कहाँ से एक शक्ति का संचार हुआ। उसने झटके से अपने आप को राणा के बंधन से मुक्त किया और पड़ोसी की छत पर लांघ गया। डरा हुआ यतिन किसी प्रकार छत से नीचे उतरा और उस रात्रि के सन्नाटे में शफी चाचा के घर की ओर भागा। भाग्यवश शफी चाचा का घर उसके घर से सटा हुआ ही था। द्वार खटखटाया। चाची ने द्वार खोला। देखा, घबराया हुआ यतिन द्वार पर खड़ा है। 'क्या हुआ बच्चे? तू इतना घबराया हुआ क्यूँ है? क्या कोई बुरा सपना देखा है?', चाची ने प्रेम से प्रश्नों की झड़ी ही लगा दी। यतिन का मन हुआ कि वह चाची को राणा के इस प्रकार आगमन से अवगत करा दे। लेकिन तभी उसके मष्तिष्क में राणा की चेतावनी घूमने लगी। 'अगर इस घटना के बारे में किसी को बताया तो वह उसे जान से मार डालेगा'। अब चौदहवें वर्ष में कदम रखने वाला बच्चा ही तो था यतिन। बस राणा के सम्बन्ध में कुछ बताने का उसका साहस ही नहीं हुआ। बोला, 'हाँ चाची, एक बुरे सपने ने मुझे झकझोर दिया।' यह कहकर धम से द्वार पर ही बैठ गया। तब तक शफी चाचा भी जाग गए और वहीं आ गए। यतिन को उसके घर ले आए। रात्रि में तीसरे पहर तक उसके साथ रहे। अच्छी अच्छी कहानियां सुनाते रहे और आश्वासन देते रहे कि डरने की कोई बात नहीं। वह कोई दूर थोड़े ही हैं? यतिन की जब आँख लग गई, तो वह अपने घर आ गए।

यतिन सुबह बहुत शीघ्र ही जाग गया। उसकी आँखों के सामने रात्रि का दृश्य बार बार आने लगा। सोचा, अगर आज दादा जी जीवित होते तो क्या किसी का ऐसा दुःसाहस हो सकता था कि चांटा मारना तो दूर, कोई हाथ भी लगा सके। एक पुरानी घटना उसको याद आ गई। विद्यालय में हिंदी भाषा का एक अध्यापक बड़ा ही क्रूर था। बात बात पर छात्रों को थोड़ी सी भी गलती पर नीम की छड़ी से हथेलीओं पर बुरी तरह पीटता था। हथेलियां सूज जाती थी। एक दिन उसने यतिन को भी किसी छोटी सी गलती पर इसी तरह पीट दिया। यतिन दर्द सहन नहीं कर पाया और रोता हुआ किसी प्रकार विद्यालय से भागकर घर पहुँच गया। जैसे ही दादा जी ने उसका सूजा हाथ

देखा, उनका क्रोध सातवें आसमान पर पहुँच गया। तुरंत विद्यालय पहुंचे, अपनी छड़ी लेकर। सभी के सामने उस अध्यापक को अपनी छड़ी से पीटा। अध्यापक का साहस नहीं कि वह उनकी छड़ी रोक सकता। उसके बाद वह त्यागपत्र देकर विद्यालय से ही चला गया। ऐसे सुरक्षित वातावरण में पला था यतिन। और अब एक गुंडे का इतना साहस कि वह उसे चांटे लगाए? यही सोचते सोचते फिर उसको नींद आ गई और वह सो गया। आज उसका मन खेतों पर जाने का भी नहीं हुआ। शफी चाचा और नत्थी दोनों ने ही उसे प्रसन्न करने का बहुत प्रयास किया। खेत पर चलने को आमंत्रित किया, परन्तु यतिन का हृदय आज खेतों पर जाने का नहीं था। शफी और नत्थी तब दोनों यतिन के बिना ही खेतों पर काम करने चले गए।

दिन यथा तथा बीता। सांय को वह कृष्णा मौसी के घर चला गया। वहीं भोजन किया। रात्रि अधिक हो गई तो अपने घर वापस आने के लिए चल पड़ा। अभी वह थोड़ी ही दूर गया होगा कि उसने राणा को अपना पीछा करते हुए देखा। घबरा कर शीघ्रता से भागने लगा यतिन। उसका मष्तिष्क ठीक से कार्य नहीं कर रहा था। ऐसे में उसे कृष्णा मौसी के घर की ओर दौड़ जाना चाहिए था, लेकिन वह दौड़ा अपने घर की ओर। शीघ्रता से घर पहुँच घर के फाटक की कुंडी बंद की। अपने कमरे की ओर भागा। अंदर पहुँच कमरे की कुंडी भी बंद कर ली। जून की तपती गर्मी की रात्रि। रात्रि का तापमान भी कोई ३० डिग्री सेल्सियस के आस पास रहा होगा। पसीने से बुरी तरह भीग रहा था यतिन, लेकिन डर से साहस नहीं हुआ कि वह कमरे से बाहर आए। बड़े भयानक विचार उसके मन में आने लगे। किसी तरह रात्रि बीती। सुबह होने पर बड़ा साहस कर उसने धीरे से कमरे का द्वार खोला। इधर उधर देखा। जब कोई नहीं दिखाई दिया तो शफी चाचा के घर की ओर दौड़ा। चाची ने बताया कि चूँकि वह देर तक सो रहा था अतः शफी चाचा ने उसे जगाया नहीं और वह खेतों पर नत्थी के साथ चले गए। वह चाहे तो खेतों पर जा सकता है। यतिन का मन ही नहीं हुआ खेतों पर जाने का, और वापस अपने घर आ गया।

बैठते उठते अब उसे सदैव राणा का भयानक चेहरा ही सामने दिखता रहा। धीरे धीरे यतिन का मानसिक संतुलन बिगड़ने लगा। वह सदैव डरा डरा रहने लगा। उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे, किस से कहे? और अगर किसी से कह दिया और राणा को पता लग गया तो वह तो उसको जान से मार देगा। बेचारा मासूम यतिन। रुपये तो वह राणा को किसी हाल में नहीं दे सकता। एक तो चाचा जी

का विश्वास, और फिर अगर रुपये नहीं हुए तो खरीफ की फसल उगाने का प्रबंध कैसे होगा? फिर शफी और नत्थी का वेतन भी तो देना है। न जाने क्यों इस बच्चे को रुपयों का महत्व अपने प्राणों से भी अधिक लग रहा था।

आज रात्रि को भी वह भीषण गर्मी में कमरे के अंदर की कुंडी लगा कर सोने का प्रयास कर रहा था। नींद नहीं आ रही थी। बस बुरे विचार पर विचार आते चले जा रहे थे। निःसहाय बेचारा यतिन रोने लगा। तभी उसने कमरे की ताक में रखी काष्ठ की एक प्रतिमा देखी। दादा जी का स्मरण आ गया। यह कुलदेवी हैं। कुलदेवी माँ हैं और हर रूप में, माँ सीता, माँ अम्बिका, माँ शरण्या, उपस्थित हैं। स्मरण आए दादा जी के शब्द, 'जभी भी कोई परेशानी या कष्ट हो, माँ को स्मरण करना। जब वह देवताओं की सहायक बन सकतीं हैं, तो तुम्हारी क्यों नहीं?' उस काष्ठ की प्रतिमा को तुरंत उसने अपने हाथ में ले लिया, और रो रो कर पुकारने लगा, 'हे माँ, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो, रक्षा करो।' न जाने कब उसे नींद आ गई और उसने नींद में एक स्वप्न देखा।

नींद में वह एक मंदिर में माँ शरण्या की मूर्ती के समक्ष गिड़गिड़ाकर रोते हुए उनके चरणों में पड़कर प्रार्थना कर रहा है। 'हे माँ, आपने तो अनगिनत राक्षसों को मार कर नर और देव सभी की सदैव रक्षा की है, मुझे भी इस राणा रूपी राक्षस से बचाओ।' तभी उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि प्रतिमा से निकलकर एक अत्यंत सुन्दर स्त्री के रूप में माँ शरण्या प्रगट हो गईं हैं। देखते देखते यह सुन्दर रूप एक भयानक रूद्र रूप में परवर्तित हो गया। आभूषणों के स्थान पर गले में नर मुंडों की माला, रक्त से सना खंजर एवं रक्त से ही भरा खप्पर उनके चारों हाथों में आ गया। बड़ी क्रोधित दृष्टिगोचर हो रहीं थी माँ। फिर देखा कृष्ण कन्हैया को। बड़ी ही मधुर बांसुरी बजाकर वह माँ के क्रोध को शांत करने का प्रयास कर रहे हैं। शनैः शनैः माँ का रूद्र रूप फिर से एक अति सुन्दर स्त्री के रूप में परवर्तित हो गया। और तब दोनों ही, माँ और कृष्ण कन्हैया, अंतर्ध्यान हो गए। हड़बड़ाहट में यतिन उठा। उसकी नींद अब छू मंतर हो गए थी। बस, स्वप्न में देखी हुई माँ और कृष्ण कन्हैया के रूप की छवि को निहारता रहा और न जाने कब उसकी आँख लग गई।

बहुत देर तक सोया यतिन आज। न जाने क्यों उसके मन में एक विचित्र शांति थी, साहस था, और डर उसके मष्तिष्क से बिलकुल निकल चुका था। कमरे का द्वार खोला और बाहर आया। सूर्य देव सर पर चढ़ आए थे। अवश्य ही यह देर सुबह का

समय होगा। उसने आँगन में शफी चाचा और नत्थी को बातें करते सुना। आज शफी चाचा और नत्थी अभी तक यहीं? क्या खेतों पर कार्य करने नहीं गए? बड़े प्रसन्न लग रहे थे। बच्चा शफी चाचा के समीप पहुंचा और जानना चाहा कि वह आज खेतों पर कार्य हेतु क्यों नहीं गए हैं? शफी चाचा बोले, 'बेटा, एक घटना घटित हो गई है। उसी की चर्चा कर रहे थे। संभवतः तुम नहीं जानते होगे कि गांव में एक राणा नाम का गुन्डा था। आतकं मचा रखा था उसने अपने और आस पास के कई गांवों में। कल रात्रि को किसी ने उसकी हत्या कर दी।'

धक्क से रह गया यतिन। अति सुन्दर स्वरुप वाली माँ शरण्या को रुद्ररूप माँ काली के रूप में परवर्तित होने वाला उनका चेहरा उसकी आँखों के सामने घूमने लगा। उसे विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि वह स्वप्न था अथवा यथार्थ। तुरंत अपने कमरे की ओर भागा, और उसी कुलदेवी रूपी काष्ठ की प्रतिमा के समक्ष नतमस्तक हो कर दादा जी द्वारा स्मरण कराई हुई स्तुति करने लगा।

त्राहि त्राहि मेरी माँ शरण्या, घेरें मुझे चहुँ ओर अघगत ।
जलत तन मन होत पीड़ा, शीतल करो मैं शरणागत ।।
त्राहि त्राहि मेरी माँ शरण्या, घेरें मुझे चहुँ ओर अघगत ।
भण्डासुर मर्दिनी मैया, कियो बलशाली असुर निर्गत ।
तुच्छ कलियुगी पापीजन, कष्ट दे मोहिं सदैव सतावत ।।
त्राहि त्राहि मेरी माँ शरण्या, घेरें मुझे चहुँ ओर अघगत ।
दो दरस मुझे तुम मैया, करबद्ध दास विनती मैं करत ।
कामेश्वर अर्धांगिनी देवी, दो वरदान हो भय निःसृत ।।
त्राहि त्राहि मेरी माँ शरण्या, घेरें मुझे चहुँ ओर अघगत ।
मैं सिडी अज्ञानी पातकी, ना जानूं माँ अर्चन विधिवत ।
बुद्धि न समझे तेरी महिमा, गुरु बारम्बार समझावत ।।
त्राहि त्राहि मेरी माँ शरण्या, घेरें मुझे चहुँ ओर अघगत ।
समझ मुझे मूढ़ मेरी मैया, करो भवसागर से निःसृत ।
आया तेरे द्वार मैं ललिता, हुआ हूँ मैं तेरे शरणागत ।।
त्राहि त्राहि मेरी माँ शरण्या, घेरें मुझे चहुँ ओर अघगत ।

भावुकपन

थोड़ा समय और बीता। वह अब स्थानीय विद्यालय में नवीं कक्षा का छात्र था। अकेले में रहने की उसकी अब आदत सी हो गई थी। परिवार में महीने में एक बार और कभी कभी तो दो बार चाचा जी का कृषि एवं विद्यालय के प्रबंधन हेतु आना जाना होता था। बस यही उसका परिवार के किसी सदस्य के साथ नियमित सम्बन्ध रहता था।

हाँ, संभवतः मैंने अभी तक यह नहीं बताया कि चाचा जी गांव के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के प्रबंधक भी थे। इस विद्यालय की नींव दादा जी एवं उनके छोटे भाई ने ही डाली थी। दादा जी के छोटे भाई उस समय जनपद विद्यालय उप-निरीक्षक थे। वह बड़े ही सद्भावी, भ्रातृ-भक्त एवं समाज सेवी पुरुष थे। यह काल भारत की अंग्रेज़ों द्वारा स्वतन्त्रता दिए जाने के पश्चात का था। उस समय गांव तो क्या, उसके आस पास २० किलोमीटर के दायरे में भी कोई उच्चतर माध्यमिक विद्यालय नहीं था। अगर कोई विद्यार्थी प्राइमरी शिक्षा से आगे का अध्ययन करना चाहे तो उसे पहासू अथवा खुर्जा कस्बे में जाना पड़ता था। दोनों ही कस्बे गांव से २० किलोमीटर से अधिक की दूरी पर ही रहे होंगे। अब प्रतिदिन तो इतनी दूर आना जाना संभव है नहीं अतः उनको वहीं निवास की सुविधा करनी पड़ती थी। निर्धन साधारण किसानों की संतानों के लिए यह खर्चा उठाना असंभव था। अतः दादा जी एवं उनके छोटे भाई ने गांव में ही एक उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय की नींव डालने की योजना प्रारम्भ की। दादा जी ने अपनी स्वयं की कृषि भूमि का एक बड़ा भाग विद्यालय को दान में दे दिया। दादा जी के छोटे भाई ने स्वयं के अर्जित एवं मित्रों से विद्यालय के भवन के लिए धन एकत्रित किया। दादा जी के छोटे भाई चूँकि स्वयं शिक्षा विभाग में एक उच्च पद पर आसीन थे अतः विद्यालय की शिक्षा विभाग से मान्यता लेने में कोई कठिनाई नहीं आई। अब प्रश्न था कि इस विद्यालय के प्रधानाचार्य का पद किस को दिया जाए? उस समय इस पद हेतु स्नाकोत्तर शिक्षा वाले व्यक्ति गांव और उसके आसपास बहुत कम, या मैं कहूँ कि संभवतः न के बराबर थे, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। जो भी व्यक्ति इस प्रकार योग्य थे वह सरकार के उच्च पद पर आसीन थे। क्यूँ कर कोई इतना योग्य व्यक्ति एक छोटे से नए विद्यालय का प्रधानाचार्य बनने को तैयार होगा? भाग्यवश इस समस्या का भी तुरंत समाधान मिल गया। चाचा जी के एक अभिन्न मित्र श्री कैलास सिंह राघव जी, जो पास के गांव लखनवाड़ा के ज़मींदार के पुत्र थे, अभी अभी स्नाकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण कर निकले थे। जब चाचा जी ने उनके सामने यह प्रस्ताव

रखा तो वह तुरंत मान गए। कहते हैं कि उन्होंने केवल १ रुपये मात्र मासिक वेतन पर प्रधानाचार्य का कार्य सम्हाला। विद्यालय की प्रबंधन समिति का गठन हुआ, जिसमें सर्व सम्मति से जीवन पर्यन्त दादा जी को अध्यक्ष एवं चाचा जी को प्रबंधक नियुक्त किया गया। यह दोनों ही पद माननीय एवं अवैतनिक थे।

खरीफ की बोआई प्रारम्भ होने से पहले चाचा जी का आगमन हुआ। यतिन ने गैहूँ बेचकर लाए ६०० रुपये चाचा जी को थमा दिए। जिस प्रकार यतिन ने चाचा जी की आज्ञा का पालन किया, चाचा जी गदगद हो गए। यतिन को हृदय से लगा लिया और बोले, 'जानता हूँ तुम नवीं कक्षा के छात्र हो। अगले वर्ष दसवीं कक्षा में प्रवेश करोगे। दसवीं कक्षा के समापन पर मंडल (बोर्ड) परीक्षा होगी। यह परीक्षा तुम्हारा भविष्य निर्धारित करेगी। अतः खूब मन लगाकर पढ़ो। जब अगले वर्ष परीक्षाएं समाप्त हो जाएंगी तो मैं तुम्हें छुट्टियों में शहर अपने घर ले चलूँगा।' बड़ा उत्साहित हो गया यतिन। दादा जी की मृत्यु पर वह अपने चचेरे भाई एवं चचेरी बहन से मिला था। चचेरे भाई से तो उसकी गहन मित्रता हो गई थी। उन सब से दोबारा मिलन होगा, इस विचार ने उसे आनंदित कर दिया।

यतिन के बड़े भाई नरेन अलीगढ़ मुस्लिम विद्यालय से अभियांत्रिकी (इंजीनियरिंग) के स्नातक (बैचलर) की शिक्षा ले रहे थे। यतिन का उनसे मिलने को भी बड़ा मन था। सुना था कि वह बड़े मेधावी छात्र हैं। अपनी अभियांत्रिकी की कक्षा में प्रथम अथवा द्वितीय स्थान पर ही रहते हैं। उनकी पढ़ाई में इस सफलता के कारण उन्हें छात्रवृति भी मिलती है। सोचा, परीक्षा के पश्चात वह पहले चाचा जी के गृह शहर जाएगा, फिर वहां से अगर संभव हुआ और वह अच्छी श्रेणी से १०वीं कक्षा में उत्तीर्ण हुआ तो संभवतः वह भी अलीगढ़ मुस्लिम विद्यालय में ही प्रवेश लेने हेतु अलीगढ़ जाएगा। वहीं तब वह अपने भाई से मिलेगा।

यतिन अक्सर यह सोचता रहता कि काश वह भी अपने भाई की ही तरह एक मेधावी छात्र होता। ऐसा नहीं था कि यतिन को पढ़ाई में कोई रूचि नहीं थी। वैसे तो वह भी अपने स्थानीय विद्यालय की कक्षा में प्रथम ही आता था। परन्तु उसकी रूचि कृषि में अधिक थी। संभवतः वह अपनी पढ़ाई पर उतना ध्यान नहीं देता था। फिर ग्रामीण विद्यालय का स्तर भी तो शहर के विद्यालयों से बहुत निम्न ही होता है न, तो यहां की कक्षा में प्रथम आना तो अंधों में काणा राजा समान था।

दादा जी की मृत्यु को कोई ३ मास ही बीते होंगे कि वर्षा ऋतू का आगमन हो गया। अगस्त का महीना चल रहा था। पिछले एक सप्ताह से वर्षा देवी रुकने का नाम ही नहीं ले रहीं थीं। इंद्रदेव के प्रकोप ने न जाने कितने निर्धन किसानों को बेघर बना दिया। अधिकांश गृह गांव में मिट्टी के बने हुए थे, कुछ ढह गए। अभाग्य से उन ढहे हुए घरों में से एक यतिन के पड़ोसी और दूर के सम्बन्धी रमेश चाचा का था। रमेश चाचा के परिवार में ६ सदस्य थे; रमेश चाचा स्वयं, पत्नी, माँ, तीन वर्ष का पुत्र एवं उनकी अतिथि बनकर आई हुई एक १४ वर्षीय पुत्री के साथ बड़ी बहन। घर ढह जाने पर रमेश चाचा यतिन के पास प्रार्थना लेकर आए कि जब तक वह अपने ढहे हुए घर को पुनर्स्थापित न कर लें, क्या तब तक वह परिवार सहित यतिन के घर में रह सकते हैं? यतिन को क्या आपत्ति हो सकती थी? बहुत बड़ा घर था। इस तरह के दो परिवार और समा सकते थे। यतिन को तो इससे अत्यंत प्रसन्नता हुई कि चलो कुछ अधिक लोग घर में रहेंगे तो उसको साथ मिलेगा, उसका अकेलापन दूर होगा। तुरंत उसने हाँ ही नहीं कर दी, स्वयं भरी बरसात में उनके सामान को अपने घर लाने में उनका हाथ बंटाने लगा। अपने चाचा जी को शहर पत्र लिख इसकी सूचना दे दी। चाचा जी का भी तुरंत प्रत्युत्तर आ गया, 'पुत्र यतिन, प्रतिकूल परिस्थितियों में हमें अवश्य ही दूसरों की यथा संभव सहायता करनी चाहिए। तुमने बहुत अच्छा किया कि रमेश और उसके परिवार को छत प्रदान की।'

रमेश चाचा एक छोटे किसान थे। साथ साथ ही स्थानीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में एक अध्यापक भी। गांव के स्तर से उनकी आय ठीक ठाक ही थी अतः उनके परिवार का जीवन आर्थिक दृष्टि से संपन्न ही कहा जा सकता था। उनकी बड़ी बहन जो आजकल उनकी अतिथि थीं, अभाग्यवश अपाहिज थीं। उनका एक पैर जन्म के तुरंत पश्चात पोलियो के कारण निर्बल हो गया था अतः लंगड़ाकर चलती थीं। ऐसा सुनने में आया था कि पति की आकस्मिक मृत्यु के बाद उन्होंने अपने देवर से विवाह कर लिया था। उनके प्रथम पति से तीन पुत्रियां थीं। आर्थिक स्थति अच्छी नहीं थी, अतः वह इस समय आर्थिक मदद की आशा से अपनी १४ वर्षीय बड़ी पुत्री के साथ बड़े भाई के पास आईं हुईं थीं। इनकी दो अन्य छोटी पुत्री उनके ससुराल गांव में अपने सौतेले पिता के साथ ही रह रहीं थीं।

बड़ी कर्कशा थीं यह रमेश चाचा की बहन। ऐसा प्रतीत होता था कि समस्त विश्व का विष उनकी जिव्हा पर ही विराजमान था। कभी किसी को एक शब्द प्रेम और भलाई

का नहीं बोल सकतीं थीं। उनके लिए यह समस्त विश्व राक्षसों की संतान था। उन्हें सदैव दूसरों में बुराई ही दिखाई देती थी। यहां तक कि अपने आश्रयदाता भाई रमेश और उनकी पत्नी को हर समय खरी खोटी ही सुनाती रहतीं थीं। संभवतः उन्हें इसकी अत्यंत ईर्षा थी कि जब वह अपना जीवन एक घोर आर्थिक संकट में बिता रहीं हैं तो उनका भाई इतना संपन्न कैसे हो सकता है? भाई की सम्पदा पर वह अपना उतना ही अधिकार समझतीं थीं जितना भाई का स्वयं का परिवार। यह तो भारतीय संस्कृति, संभवतः रमेश चाचा की माँ का अपनी पुत्री के प्रति मोह, या उनका स्वार्थपन, कोई तो कारण था जिस से वह उनका यह कर्कश व्यवहार सहर्ष स्वीकार करते थे। अब आप कह सकते हैं कि रमेश चाचा का क्या स्वार्थ हो सकता है? यह ब्रह्मा द्वारा निर्मित मनुष्य बिना अपने स्वार्थ के कभी कुछ नहीं करता, इसका अनुभव यतिन को इतनी कम आयु में भी भली भाँती हो गया था।

घर में रमेश चाचा ही एक मात्र पुरुष थे। विद्यालय में अध्यापन कार्य के अतिरिक्त भार के कारण वह कृषि पर पूर्ण ध्यान नहीं दे पाते थे। उन्हें कृषि सेवक की आवश्यकता पड़ती थी, जिसके लिए उन्हें वेतन देना पड़ता था। गांव के अधिकतर परिवारों की मानसिकता कंजूसी की होती है और रमेश चाचा भी इससे अछूते नहीं थे। उन्हें श्रमकारों को वेतन देना बहुत अखरता था। ऐसे में जब उनकी बहन अपनी १४ वर्षीय पुत्री के साथ उनके घर अतिथि बनकर आई तो उन्हें अत्यंत प्रसन्नता हुई। उनकी भांजी ने भगवान् की कृपा से कृषक जैसा गठा हुआ शरीर पाया था और कृषक-कार्य करने में उसे कोई आपत्ति भी नहीं थी। रमेश चाचा को तो एक बिना वेतन की सहायक मिल गई थी।

प्रातः काल सूर्यदेव के दर्शन से पहले ही, ब्रह्म-मुहूर्त में, रमेश चाचा की बहन का कर्कश स्वर सुनाई देने लगता था। अपने इसी स्वर से वह समस्त परिवार को जगाने का कार्य करतीं थीं, विशेषकर अपनी पुत्री को। नास्ते के नाम पर एक गिलास मट्ठा देकर उसे तुरंत कृषि कार्य पर जाने का आदेश देतीं थीं। फिर क्रम प्रारम्भ होता था बेचारी का कोल्हू के बैल की तरह दिन भर पिसते रहना। खाने के नाम पर सूखी रोटी, मट्ठा के साथ, बस यही उसका भोजन होता था। यतिन के लिए यह एक बहुत बड़ा आश्चर्य था! माँ का भी अपनी पुत्री के प्रति इतना कठोर व्यवहार हो सकता है? यह यतिन के मस्तिष्क के सोचने से बाहर था। एक दिन यतिन ने शफी चाचा से यह पूछ ही लिया। शफी चाचा बोले, 'बेटा, तुम अद्दढ़ आर्थिक स्थिति से ग्रसित तीन पुत्रीओं

की पुत्र-रहित माता का दुःख नहीं समझ सकते। अभाग्य से हमारे समाज में निर्धन परिवार पर पुत्री एक बोझ होती है। जब स्वयं का पेट भरने का साधन ठीक से न हो तो कहाँ से वह उसके विवाह के लिए पैसे लाएगी, और यहां तो तीन-तीन पुत्रीओं की चिंता करनी है। यह उसकी विवशता और झुंझलाहट ही है जो क्रोध रूप में अपनी पुत्रीओं पर बरसती है। तुम यह सब अभी नहीं समझ पाओगे। वयस्क होकर जब इन बातों को समझने लगो और संभव हो तो इस समस्या का समाधान निकालने का प्रयत्न अवश्य करना।' यह शफी चाचा क्या दार्शनिक बातें कह गए, यतिन की कुछ समझ में नहीं आया।

यह आयु कोई इस बच्ची की कृषि-श्रमक के रूप में खेती में कार्य करने की है? इस अवस्था में तो विद्यालय जाकर कुछ पढ़ना चाहिए। इस विचार ने यतिन को विचलित कर दिया। अपना यह सन्देश किस प्रकार वह इस बच्ची की माँ तक पहुंचाए। यतिन का साहस उस कर्कशा स्त्री से सीधे बातें करने को नहीं हो रहा था। कुछ सोच विचारकर एक दिन उसने अपने इन विचारों का पलड़ा रमेश चाचा के सम्मुख खोल ही दिया।

रमेश चाचा वैसे तो उदार हृदय के व्यक्ति थे और यतिन के प्रति उनका प्रेम एवं आदरभाव भी था, लेकिन कभी कभी स्वार्थ और उत्तरदायित्व से बचने की प्रवृति मनुष्य को अपनी अंतरात्मा का स्वर नहीं सुनने देती। इसके साथ ही वह अपनी कर्कशा बहन से डरते भी थे। यतिन के विचारों का हृदय से समर्थन करने के पश्चात भी उनका अपनी बहन से यह बात कहने का साहस नहीं हो रहा था। यतिन ने जब थोड़ा दवाब डाला और उन्हें बहुत उकसाया, तब एक दिन उन्होंने अपनी बहन से इस चर्चा का श्री गणेश करने का निर्णय ले लिया।

'अरी बहना, एक विचार मेरे मन में आ रहा था। भांजी हर समय खेती में ही कार्य करती रहती है। कभी विद्यालय नहीं गई। आज के युग में निरक्षर होना ठीक नहीं। उसके विवाह में भी बाधाएं उत्पन्न हो सकती हैं। कोई लड़का नहीं चाहेगा कि उसकी होने वाली पत्नी अनपढ़ हो। क्यों न इसका गांव के प्राइमरी विद्यालय में प्रवेश भी करा दिया जाय। विद्यालय तो कुछ ही घंटों के लिए लगता है। पढ़ाई के साथ साथ सुबह और सांय, दोनों समय, कृषि कार्य भी करती रहेगी। अगर पढ़ाई से इसे समय नहीं

भी मिला तो कोई बात नहीं, मैं कृषि-श्रमक रख दूंगा,' अपनी बहन से साहस कर बोले रमेश चाचा।

रमेश चाचा का इतना क्या कहना था कि घर में भूचाल आ गया। क्रोध से बहना का चेहरा तमतमा गया। लगता था कि वह अपने भाई का इसी समय अंत कर डालेंगी।

'अरे ये कलमुंही क्या पढ़ेगी? जिस दिन से घर में आई है, अनर्थ ही अनर्थ हो रहा है। अपने भाई को खा गई, फिर अपने बाप को भी खा गई, अब न जाने कितनों को और खाएगी। यह तो मुझे भी खाने को बैठी है, वह तो इसका वश नहीं चलता। बड़ा आया है इसको पढ़ाने वाला? आगे से ऐसी बात मुझ से कही तो तेरी टांग तोड़ दूंगी,' क्रोध में उच्च कर्कश स्वर में बोली रमेश चाचा की बहन। रमेश चाचा डर से कांपने लगे। इधर उधर बगलें झांकने लगे। अपनी बहन का क्रोध शांत करने के लिए सारा दोषारोपण यतिन पर कर दिया।

'अरी बहन, इतना क्रोधित क्यों होती है। मैं तो तेरे हृदय की सब बात जानता हूँ और तुझ से पूर्णतः सहमत हूँ। ये यतिन, कई दिनों से मेरे पीछे पड़ा है। कहता है यह ठीक नहीं कि एक बच्ची से तुम इतना कार्य कराते हो। उसकी यह आयु विद्यालय जाने की है, न कि कृषि कार्य करने की। सो मैंने वह बात तुमसे कर दी। मेरा इस में कोई दोष नहीं है,' हाथ जोड़कर रमेश चाचा बोले अपनी बहन से।

'अच्छा तो यह लड़का तेरे मष्तिष्क में यह सब ऊल फ़िज़ूल भर रहा है। पायजामा तो ठीक से पहनना आता नहीं और चला है मुझे शिक्षा देने? इतना ही इस पर तरस आता है तो रख ले इसे अपने पास। अपने बाप से मुझे इसका मूल्य १०,००० रुपये दिलवा दे और कर ले इससे विवाह। फिर चाहे इसे पढ़ाई करवाए या इस से काम करवाए। यह जाने और इसका बाप,' तीव्र कर्कश स्वर में इस प्रकार बोलीं रमेश चाचा की बहन जो यतिन को पूर्णतः सुनाई दे जाए।

बेचारा यतिन। वह तो अपने विचार से एक भलाई की बात सोच रहा था और यहां उलटे उसी पर दोषारोपण हो गया। संभवतः उसको एक बड़ा पाठ मिल गया। अपने कार्य से कार्य रखो। इन नासमझ मूर्खों को समझाने से कोई लाभ नहीं। हे भगवान्, कब जाग्रता आएगी और इस तरह की प्रवृत्ति वाले लोग कब और कैसे अपनी आने

वाले पीढ़ी का मार्ग दर्शन करेंगे और उन्हें प्रकाश दिखलाएंगे, यही सोचते सोचते वह खेतों पर निकल गया।

धीरे धीरे बरसात का मौसम समाप्त हो गया। रमेश चाचा ने अपने घर की कच्ची दीवारें खड़ा कर उन पर छप्पर डाल रहने योग्य बना लिया। फिर वह दिन भी आ गया जब रमेश चाचा अपने परिवार सहित अपने घर में चले गए। फिर रहा गया यतिन अकेला।

शिशुर ऋतु का प्रारम्भ हो चुका था। थोड़ी थोड़ी मीठी मीठी सर्दी पड़ने लगी थे। रविवार का आज दिन था, विद्यालय भी बंद था। कोई तीसरे पहर का समय था। भोजन कर यतिन कुछ अलसाया हुआ घर पर ही आराम कर रहा था कि उसे प्रबलता से फाटक पीटने का स्वर सुनाई दिया। सोचा कोई विद्यालय का मित्र होगा, भागा फाटक खोलने। देखकर अचंभित रह गया। उसके पिता अपना सामान लिए खड़े थे। तुरंत सामान अपने हाथों में लिया और पिता को अंदर ले गया। कुछ अस्वस्थ लग रहे थे पिता। भागकर वैद्य जी के पास पहुंचा। वैद्य जी ने तुरंत आ कर निरीक्षण किया। यतिन को कहा कि घबराने की कोई बात नहीं। दमा उखड़ आया है। कुछ दवाएं देकर चले गए।

पिता धीरे धीरे स्वस्थ होने लगे। दुर्बलता बहुत थी। उन्होंने यतिन को इस समय के अंतर्गत बताया कि उन्होंने अस्वस्थता के कारण कार्य से त्याग पत्र दे दिया है, और वह अब गांव में ही रहेंगे। बड़ा अच्छा लगा यतिन को। अब उसका अकेलापन समाप्त।

समय बीतता चला गया। यतिन की दसवीं कक्षा की मंडल परीक्षाएं समाप्त हो गईं। चाचा जी ने अपना वचन निभाया। परीक्षाओं की समाप्ति के पश्चात वह कुछ दिनों के लिए उसे अपने घर शहर में ले गए। वहीं मंडल का परिणाम आया। यतिन प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ था। उत्तीर्ण हुए छात्रों की कोई उच्च कोटि के क्रम में तो नहीं था, छात्रवृति मिलने के भी कोई आसार नहीं थे, फिर भी इतने अंक अवश्य थे कि उसे विश्वविद्यालय में प्रवेश मिल जाए।

चाचा जी के घर से पहले गांव आकर विद्यालय से अपनी अंक पत्रिका ली और अलीगढ़ आ गया अपने भाई के पास, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने।

बड़े भाई नरेन दादा जी के छोटे भाई (छोटे बाबा) के घर में अलीगढ़ में रहकर पढ़ाई कर रहे थे। छोटे बाबा ने अवकास प्राप्ति के पश्चात अलीगढ़ में ही अपना मकान बना लिया था और मृत्यु तक अपने परिवार के साथ वहीं रहे। उनकी मृत्यु के बाद उनके बड़े पुत्र (यतिन के चाचा जी) दिल्ली में नौकरी करते थे और अपने परिवार के साथ वहीं रहते थे। छोटे बाबा के छोटे पुत्र अभी यहीं अलीगढ़ से ही पढ़ाई कर रहे थे। चाचा जी के मामा जी जो स्थानीय राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में एक वरिष्ठ अध्यापक थे, वह भी वहीं इस मकान पर ही रहते थे। इस प्रकार यतिन को अलीगढ़ में फिर से पूरा परिवार मिल गया।

समय बीतता चला गया। यतिन के अलीगढ़ में दो वर्ष ही हुए होंगे कि बड़े भाई ने अभियांत्रिकी की स्नातक परीक्षा बड़े ऊँचे अंक और क्रम से प्राप्त की तथा मुंबई में एक अत्यंत प्रतिष्ठित अनुसंधान केंद्र, भाभा अणु अनुसंधान केंद्र, में वैज्ञानिक की नौकरी स्वीकार कर ली। वह तब मुंबई चले गए। बड़े भाई ने नौकरी मिलने के पश्चात अपना उत्तरदायित्व समझ छोटे भाई को प्रति मास व्यय के लिए एक निर्धारित राशि भेजना प्रारम्भ कर दिया। छोटे बाबा का घर विश्वविद्यालय से कई मील दूर था। आने जाने में असुविधा को देखते हुए यतिन ने तब विश्वविद्यालय के छात्रावास में प्रवेश लेने का मन बनाया, और अपने सहपाठी एवं अभिन्न मित्र मोहम्मद असलम अंसारी से इस विषय में चर्चा की। असलम ने तुरंत यतिन को छात्रावास अधिकारी से मिलवाकर स्वयं के ही कमरे में रहने का प्रबंध करवा दिया। यह कमरा तीन विद्यार्थियों के रहने के लिए उपयुक्त था। असलम के साथ इसमें उर्दू विभाग से पी एच डी कर रहे मोहम्मद कैफ़ भी इसी कमरे में रहते थे। मोहम्मद कैफ़ साहेब जिन्हें हम सब प्रेम से डॉ साहेब से सम्बोद्धित करते थे, सूफी मत से अत्यंत प्रभावित थे। उनका पी एच डी का विषय भी सूफी संतो से ही सम्बंधित था। डॉ साहेब दुबले पतले एक हड्डी के ढांचे, पर ज्ञान कूट कूट कर भरा पड़ा था। असलम को सूफी मत में तो कोई विशेष रूचि नहीं थी, लेकिन ऐसा भी नहीं था कि वह वार्तालाप में भाग न ले। परन्तु यतिन को सूफी सम्प्रदाय के बारे में अधिक से अधिक जानने की उत्सुकता थी। उसे दादा जी के कथन की स्मृति हो आई। सूफी मत और हमारे कृष्ण भगवान् द्वारा श्रीमद्भागवदगीता में दिये प्रवचन के ज्ञान में कोई अंतर नहीं है। इस प्रकार हुआ यतिन का सूफी संत मत से परिचय।

सूफी मत से परिचय

दादा जी के कथनानुसार आदि काल से मनुष्य के मन में यह प्रश्न सदैव उठता आया है कि मनुष्य जीवन की चरितार्थता किस बात में है? गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं कि नर जन्म श्रेष्ठ है और बड़े भाग्य से ही प्राप्त होता है।

बड़े भाग मानुष तन पावा । सुर नर मुनि सब ग्रन्थन गावा ।।

सनातन धर्म में अंततः मनुष्य जन्म का उद्देश्य भगवद प्राप्ति बताया गया है। अन्य धर्म, विशेषकर इस्लाम में इस बारे में क्या मत है, यतिन को यह जिज्ञासा सदैव रही। इस्लाम धर्म के बारे में यतिन को उतना ही ज्ञान था जितना या तो उसके दादा जी ने बताया अथवा शफी चाचा ने। यह दोनों ही सूफी मत से अत्यंत प्रभावित थे, अतः इस्लाम धर्म की व्याख्या उन्होंने सूफी मत की प्रधानता के साथ ही व्यक्त की। भगवद कृपा तो देखो, यतिन की जिज्ञासा शांत कराने के लिए उन्होंने उसे सूफी मत के विद्वान् और विशेषज्ञ मोहम्मद कैफ़ साहेब (डॉ साहेब) से मिलवा दिया।

छात्रावास में लगभग प्रतिदिन रात्रि को भोज के बाद कुछ घंटों के लिए धार्मिक चर्चा होना अनिवार्य सा हो गया था। डॉ साहेब को भी अपना सूफी मत ज्ञान देने में अत्यंत रूचि थी, और यतिन को जानने में। ऐसा लगता था कि डॉ साहेब और यतिन गुरु-चेला का रूप धारण किए हुए हैं। असलम कभी कभी इस चर्चा में सम्मिलित हो जाता था। जैसा यतिन ने असलम को समझा, उसे धर्म में कोई विशेष रूचि नहीं थी। धर्म उसके लिए पैतृक उपहार के रूप में एक थोपी हुई कोई प्रथा थी। अब मुसलमान था, और मुसलमान होने के कारण नमाज़ पढ़ना आवश्यक है, तो प्रतिदिन तो नहीं लेकिन हर शुक्रवार को यतिन ने उसे नमाज़ पढ़ने मस्जिद में जाते अवश्य देखा।

डॉ कैफ़ साहेब डॉ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी (हिंदी भाषा के एक श्रेष्ठ साहित्यकार) के बड़े प्रसंशक थे। बहुदा वह उनके उद्धरण प्रस्तुत करते रहते थे। डॉ द्विवेदी जी कहते हैं कि मनुष्य जैसे जैसे विकसित होता गया है, त्यों त्यों अधिक गहराई में सोचता गया है। ऊपर से दिखाई देने वाला जो स्वरुप है, वह मानसिक स्तर पर विकास के साथ साथ निरंतर बदलता रहता है। मानसिक स्तर पर यथार्थता जो दिखलाई देती है, वह बौद्धिक स्तर पर बदल जाती है। इसी कारण संभवतः बुद्ध पुरुष इस निष्कर्ष पर

पहुंचे हैं कि मन की अपेक्षा बुद्धि श्रेष्ठ है। परन्तु क्या बुद्धि ही अंतिम तत्व है? मनुष्य का अनुभव बतलाता है कि केवल बौद्धिक विवेचन में ही जीवन की चरितार्थता नहीं है। जब मनुष्य इन्द्रिय भोग से थक जाता है तो उसे जीवन सारहीन लगने लगता है। ऐसे में जब उसे 'गुहाहित गह्वरेष्टाम' का साधन मिलता है तो वह शांति पा जाता है। भगवान् श्री कृष्ण ने श्रीमद्भागवद्गीता में कहा है,

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ।।

जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करके स्पृहारहित, ममतारहित और अहंकाररहित होकर आचरण करता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है।
भगवान् श्री कृष्ण द्वारा कथित शान्ति प्राप्ति हेतु इस तरह का जीवन कैसे जीया जाए, विविध धर्म अपने अपने मतों के अनुसार इसका विवेचन करते हैं। सूफी साधकों ने इसे प्राप्त करने का लक्ष्य वैरागी एवं तपोमयी जीवन को प्राथमिकता देने से प्राप्त करने पर विशेष ध्यान दिया है। यह जब तक संभव नहीं जब तक कि मनुष्य ईश्वर के प्रति प्रेम भावना न जगा ले। सूफी संतों का मानना है कि ईश्वर से प्रेम भावना के बिना वैराग्य और विवेक अधिक देर तक नहीं ठहरते। जब मनुष्य ईश्वर से प्रेम करता है तो उसका उस परमात्मा से एकाकीकरण हो जाता है। भगवद्भक्ति प्राप्त प्रसिद्ध सूफी संत जामी का कथन है कि 'मैं वही हूँ जिसे मैं प्रेम करता हूँ, और जिसे मैं प्रेम करता हूँ, वह मैं ही हूँ। एक ही शरीर में वास करने वाले हम दो प्राण हैं। अगर तुम मुझे देखते हो तो उसे देखते हो, और अगर उसे देखते हो तो तुम हम दोनों को देखते हो।' यह सूफी संत मत कथन और सनातन वैदिक धर्म कथन कि ईश्वर हम सब में है, क्या एक ही नहीं है?'

सूफी या सूफीवाद एक अरबी के सूफ शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है व्यक्तिगत तपस्या और साधारण जीवन जीते हुए ईश्वर की प्राप्ति।

सूफी संतों का ऐसा विश्वास है कि परमात्मा प्रेम स्वरुप है। वह मनुष्यों को शान्ति के पथ पर तब तक अग्रसित नहीं करता जब तक वह उसके प्रेम में न डूब जाएं। उस परमात्मा का प्रेम प्राप्त करने के लिए अपने समस्त कलुप को धोना आवश्यक है जिससे प्राणी इस सांसारिक वस्तुओं के प्रलोभन में पड़ा हुआ है। जब इन सांसारिक

वस्तुओं का त्याग कर प्राणी ईश्वर भक्ति में लीन हो जाता है तो उसे ईश्वर का प्रेम प्राप्त होता है। अतैव, सूफी साधना में ईश्वर से प्रेम ही महत्वपूर्ण है। सूफ़िओं का मानना है कि ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम करता है। बस ईश्वर के प्रेम को अपने प्रेम से समझने की आवश्यकता है। मनुष्य के इस प्रेम को पाकर प्रेमी और प्रेम-पात्र दोनों ही तृप्त हो जाते हैं। इस ईश्वरीय प्रेम के द्वारा जब समस्त अन्तर्द्वन्दों एवं वासनाओं का अंत हो जाता है तो ईश्वर के साक्षात दर्शन हो जाते हैं।

सनातन धर्मों के अन्य संतों की भांति सूफी संतों ने भी प्रेम पर आश्रित भाव जगत की साधना को अपनाकर अनन्य काव्य भक्तिमय रचनाएं की हैं।

सूफी कवि मलिक मोहम्मद जायसी का पद्मावत, सूफी संत कवि अमीर खुसरो इत्यादि का काव्य साहित्य इस प्रेम साधना के अनुपम उदाहरण हैं। जब मनुष्य प्रेम भावना में डूबकर काव्य द्वारा अपने हृदय को ईश्वर में लीन कर लेता है तो ईश्वर की समस्त सृष्टि पर उसकी प्रेम भावना जाग्रत हो जाती है। वह दूसरों के दुःख को अपना दुःख और दूसरों के सुख को अपना सुख समझने लगता है। दूसरों के दुःख का निवारण करने के लिए वह सब प्रकार से प्रयत्नशील रहता है और उसके लिए सभी प्रकार के कष्ट सहने को तत्पर रहता है। उसकी दृष्टि में कोई छोटा बड़ा नहीं रह जाता, सम-भावना जाग्रत हो जाती है। चूँकि समस्त प्राणीओं में वह केवल ईश्वर को ही देखता है, अतः उन्हें सुख पहुंचाना उसे ईश्वर को सुख पहुंचाने के समान ही लगता है। उसकी दृष्टि में इस ईश्वर-प्रेम से ईश्वर उसे तीन गुणों से विभूषित कर देता है - समुद्र जैसी उदारता, सूर्य की तरह परदुःखकातरता, और पृथ्वी की तरह विनम्रता। यही मुख्यतः सूफी संत मत है।

डॉ साहेब सूफी संतों के बारे में लगातार जानकारी देते रहते। प्रति रात्रि को कोई न कोई नए सूफी संत कवि अथवा उनकी कहानी पर चर्चा होती रहती। एक रात्रि को डॉ साहेब ने सूफी संत कवि अमीर खुसरो के काव्य का विमोचन किया। उनमें प्रमुख थी उनकी प्रसिद्ध क़व्वाली - बहुत कठिन है डगर पनघट की।

बहुत कठिन है डगर पनघट की, कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी।
मेरे अच्छे निज़ाम पिया, कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी।
ज़रा बोलो निज़ाम पिया, कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी।

पनिया भरन को मैं जो गई थी, दौड़ झपट मोरी मटकी पटकी।
बहुत कठिन है डगर पनघट की। कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी।
खुसरो निज़ाम के बल-बल जाइए, लाज राखे मेरे घूँघट पट की।
कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी, बहुत कठिन है डगर पनघट की।

यहां कवि ने ईश्वर प्रेम में अपने आप को ईश्वर की एक प्रेमिका (स्त्री) का रूप दिया है। भावार्थ है कि साधारतः प्रभु के दर्शन पाना उतना ही दुर्लभ है जितना एक सुंदरी को पनघट के अत्यंत दुर्गम मार्ग पर चलते हुए श्रोत से मटकी में पानी भर लाना। सुंदरी अपने प्रियतम (यहां गुरु की ओर संकेत है। गुरु ही ईश्वर दर्शन कराने में समक्ष हैं, ये इस तथ्य के समर्थक शब्द हैं) से पूछती है, 'हे मेरे प्रियतम शासक (गुरु), तुम मुझे अत्यधिक प्रिय हो। अगर तुम मुझ पर अपनी कृपा कर दो तो मैं मटकी में पानी सुलभता से भर लूँ (आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति और ईश्वर दर्शन सुलभता से कर लूँ)। हे प्रियतम (गुरु), तुम तो जानते ही हो कि यह कार्य (आपकी सहायता के बिना) अत्यंत कठिन है। जैसे ही मैं पानी भरने के लिए पनघट पर गई (आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने का एवं ईश्वर से मिलन का जैसे ही मैंने प्रयास किया) तो किसी ने मेरी मटकी को दौड़ कर जल्दी से पकड़ लिया (माया मोह में फँस गई)। मैं प्रियतम (गुरु) अपने को आप पर न्योछावर करती हूँ। आपने ही मेरी लाज बचाई। आपने ही मेरे दुपट्टे को संभाला (मुझे भव सागर बंधन में नहीं पड़ने दिया)। मैंने तो घूंघट धारण कर रखा था (सांसारिकता में पड़ती चली जा रही थी। माया मोह में अंधी हो रही थी)। आपको धन्यवाद कि आपने मुझे नीचे गिरने एवं उड़ने से बचाया (अर्थात मुझे वैराग्य भावना दी और ईश्वर के दर्शन कराए)।

अबुल हसन यमीनुद्दीन अमीर ख़ुसरो (१२५३-१३२५) (अमीर खुसरो) चौदहवीं सदी के एक प्रमुख कवि, शायर, गायक और संगीतकार थे। उनका परिवार कई पीढ़ियों से दिल्ली के राजदरबार से सम्बंधित था। मध्य एशिया की लाचन जाति के तुर्क सैफुद्दीन के पुत्र अमीर खुसरो की माँ दिल्ली के शहंशाह बलबन के युद्ध मंत्री इमादुतुल मुल्क की पुत्री थीं। सात वर्ष की अवस्था में खुसरो के पिता का देहान्त हो गया। किशोरावस्था में ही उन्होंने कविता लिखना प्रारम्भ किया, और २० वर्ष के होते होते वे समस्त भारत में एक महान कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गए। राजदरबार में रहते हुए भी खुसरो कवि, कलाकार और संगीतज्ञ बने रहे। भारतीय गायन में क़व्वाली और सितार को इन्हीं की देन माना जाता है। ८ वर्ष की आयु में वे प्रसिद्ध सूफ़ी संत

सिद्ध पुरुष हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य बन गए। उसके पश्चात उनका जीवन हज़रत निज़ामुद्दीन के प्रेम में ही बीता। उनका प्रेम सूफी संत सिद्ध पुरुष हज़रत निजामुद्दीन औलिआ के प्रति इतना प्रगाढ़ था कि एक बार उनकी जूतियां प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपना समस्त धन दांव पर लगा दिया।

एक बार की घटना है कि हज़रत निज़ामुद्दीन के पास एक निर्धन व्यक्ति आया। उसकी पुत्री का विवाह होना था। बेचारे के पास इतने पैसे भी नहीं थे कि वह लड़की के लिए विवाह का जोड़ा खरीद सकता। बड़ी आशा के साथ आया था हज़रत औलिआ के पास कि उनसे कुछ आर्थिक मदद मिलेगी। अब औलिआ तो फ़कीर थे। उनके पास पैसे कहाँ? उस पुरुष से बोले, 'पुत्र, मैं तो तुझे अपने आशीर्वाद के तौर पर अपनी यह जूतियां ही दे सकता हूँ। बस यही मेरी संपत्ति है।‘ बड़ा उदास हुआ वह निर्धन व्यक्ति। हृदय में विचार आया, ‘जूतियों का मैं क्या करूंगा?’ फिर सोचा, ‘जूतियां ले ही लेनी चाहिए अन्यथा फ़कीर का अपमान होगा।‘ जूतियां ले लीं और उदास मन से अपने घर की ओर चल पड़ा। शहर से बाहर ही निकला था कि देखा, मार्ग में किसी अमीर का काफिला आ रहा था। काफिले के निकल जाने तक मार्ग में एक शिला के पीछे खड़ा हो गया। जैसे ही वह अमीर आदमी जिसका काफिला था और जो एक ऊँट पर सवार था, उसके पास से निकला तो तुरन्त उसने अपने ऊँट को रोका। उस व्यक्ति के पास आया और कहने लगा, 'तुम्हारे पास से मेरे गुरु की सुगंध आ रही है। क्या तुम हज़रत औलिआ निज़ामुद्दीन के पास से आ रहे हो? क्या उन्होंने कोई अपनी वस्तु तुम्हें दी है?' पहले तो डर गया वह निर्धन व्यक्ति। कहीं उस पर चोरी का अपराध न लग जाए? फिर साहस कर बोला, 'जी सरकार, मैं औलिआ के पास से ही आ रहा हूँ। यह जूतियां उन्होंने मुझे आशीर्वाद स्वरुप भेंट दीं हैं।'

यह अमीर व्यक्ति कोई और नहीं बल्कि अमीर खुसरो थे, बोले, 'मैं इस ऊँट पर रखी सभी दौलत तुम्हें देता हूँ, क्या इसके बदले में मुझे औलिआ की जूतियां दे दोगे?'

निर्धन व्यक्ति को काटो तो खून नहीं। विस्मित और अचंभित! उस ऊँट पर तो सहस्रों की मात्रा में सोने के सिक्के, जवाहर और क्या क्या नहीं भरा था। पैरों पड़ गया अमीर खुसरो के। अपनी कहानी बताई, ‘लड़की के विवाह के लिए कुछ आर्थिक सहायता मांगने गया था औलिआ के पास। उन्होंने कहा वह तो फ़कीर हैं, धन तो उनके पास

नहीं, लेकिन आशीर्वाद के तौर पर यह जूतियां दे दीं। मुझे अब पता लगा औलिआ के शब्दों का महत्व। हे औलिआ, तुम्हें सत सत नमन।‘

जूतियां लेकर अमीर खुसरो हज़रत निज़ामुद्दीन औलिआ के दरबार में पहुंचे। औलिआ ने तुरंत जूतियां पहचान पूछा कि यह उन्हें कहाँ से मिलीं? अमीर खुसरो ने सब कहानी बताई और अदब से बोले, ‘हुज़ूर, यह बेशकीमती जूतियां तो मुझे बहुत सस्ती मिल गईं। इनके लिए अगर मुझे अपना जीवन भी देना पड़ता तो कम था। हज़रत हँसे, और अमीर खुसरो को अपने हृदय से लगा लिया।

डॉ साहेब बोले, ‘देखो निर्धनों के प्रति इतना दयाभाव होता है सूफी संतों के हृदय में।‘

१४वीं सदी के ही एक अन्य महान संत कबीर को भी डॉ साहेब सूफी मत से प्रभावित ही मानते थे। उनके विचार में संत कबीर के काव्य में सूफी धारणा कूट कूट कर भरी हुई थी। यद्यपि कबीर उस समय के हिन्दुओं के एक महान वैष्णव संत स्वामी श्री आचार्य रामानंद जी के शिष्य थे अतः प्रायः यह धारणा स्वाभाविक है कि उनका रुख हिन्दुओं की तरह देवी देवताओं की अर्चना की ओर रहा होगा।

काशी में परगट भये, रामानंद चेताये ।

लेकिन इसके विपरीत अपने गुरु के निर्गुण परमात्म-ज्ञान को आधार बना उन्होंने अपना जीवन समाज सेवा और उस समय की चली आ रही कुरीतियों का विरोध करने में लगाकर एक प्रकार से सूफी मत को समर्थन दिया।

जैसा उपरोक्त व्यक्त है सूफी मत में ईश्वर प्रेम और इसी प्रेम द्वारा ईश्वर मिलन चरितार्थ है। डॉ साहेब ने बताया कि संत कबीर का मुख्य उद्देश्य कोई कविता करना नहीं था, बल्कि उनका लक्ष्य निर्गुण भगवद-भक्ति था। अपनी भक्ति को प्रकट करने में अगर उनके लेखन में काव्य का सम्पुट है तो यह एक प्रकार से घलुए में मिली वस्तु है। जिस प्रकार अमीर खुसरो ने भक्ति के रास्ते को अत्यंत कठिन बताया (बहुत कठिन है डगर पनघट की), उसी प्रकार संत कबीर ने भी भक्ति मार्ग को अत्यंत कठिन बताया।

कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नांहि ।
सीस उतारे हाथ कर, सो पैठे घर मांहि ।।

इस प्रेम भक्ति के दरबार में प्रवेश करने के लिए अहंकार और दंभ को छोड़ना पडेगा। साथ ही साथ भक्त में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि उसे अपने घर को जला देने (माया मोह से दूर होना) का सामर्थ्य हो।

कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ ।
जो घर जारे आपना चले हमारे साथ ।।

कबीर के मत में भक्ति साधना के लिए द्रढ़ निश्चय एवं निर्भयता की आवश्यकता है, जिसमें जीने मरने का भय न हो।

कबीर खेत न छाँड़ि सूख, जूझिं दल माहिं ।
आसा जीवन-मरण की, मन में आनैं नाह ।।

सूफी संतों की भांति कबीर ने भी ईश्वर को प्रियतम एवं स्वयं को प्रेमिका मानकर, एक ऐसी प्रेमिका जिसका प्रेम सती की तरह पूर्णतः समर्पण का है, स्तुति की है।

कबीर सती जलन कूँ नीकलो, चितधारी एक विवेक ।
तन मन सौंपा पीव कूँ, तब अंतर रही ना रेक ।।

सूफी मत की भांति संत कबीर ने भी अपने काव्य में अपने आपको ईश्वर का दास ही दर्शाया है। यह अवश्य है कि उन्होंने ईश्वर के स्थान पर राम शब्द का प्रयोग किया है।

कबीर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ ।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैचे तित जाऊं ।।

अमीर खुसरो की भांति संत कबीर ने भी ईश्वर को अपना प्रियतम और स्वयं को उनकी बहुरिया (उनकी पत्नी) कह कर सम्बोद्धित किया है।

हरी मोरा पीव मैं हरी की बहुरिया ।
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया ।।

ईश्वर ही सर्वशक्तिमान हैं। मैं तो उनके द्वारा चालित एक यंत्र हूँ।

मेरा मुझ में कुछ नाहीं, जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझ को सोंपता, क्या लागै है मेरा ।।

जिस प्रकार सूफी मत में गुरु की प्रधानता है, संत कबीर के काव्य में भी गुरु ही शीर्ष हैं।

सतगुरु लई कमांड करि, बांहड़ लागा तीर ।
एक जू बाह्य प्रीति सों, भीतरी रहा सरीर ।।

यह तन विषय की बेलरी, गुरू अमृत की खान ।
सीस दिये जो गुरू मिलै, तो भी सस्ता जान ।।

गुरु गोबिंद दोनों खड़े काके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु आपनो, गोबिंद दियो बताय ।।

गुरुजी ने दिया अमर नाम, गुरु तो सरीखा कोई नाही ।
अलख भरा है भण्डार, कमी जामे है नाही ।।

सूफी मत में आत्मा-परमात्मा पति-पत्नी स्वरुप दो जान एक प्राण हैं। कबीर का भी यही मत है।

बहुत दिनन थे प्रीतम पाए, बडे घर बैठे आए ।
मंदिर महिं भया उजियारा, लै सूती अपना पीव प्यारा ।।

सूफी संतों ने ईश्वर को आत्म-चिंतन से स्वयं में ही ढूंढने को कहा है। वह मस्जिद अथवा किसी विशेष पूज्यनीय स्थल में नहीं, वह तो तुम्हारे अंदर ही है। संत कबीर भी यही कहते हैं ।

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढे बन माहिं ।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं ।।

वे ईश्वर की अद्वैत सत्ता को स्वीकार करते हैं। वास्तव में उनका ईश्वर रोम रोम और सृष्टि के कण कण में बसा है। वह मन में होते हुए भी दूर दिखाई देता है। किन्तु जब प्रियतम पास ही हो तो उसे संदेश भेजने की क्या आवश्यकता? इसलिये कबीर कहते हैं।

प्रियतम को पतिया लिखूं, कहीं जो होय बिदेस ।
तन में, मन में, नैन में, ताकौ कहा संदेस ।।

वास्तव में प्रिय के साथ इस संदेश व्यवहार को वे दिखावा मात्र मानते हैं, कृत्रिमता मानते हैं। जब ईश्वर रूपी प्रिय की सत्ता हर स्थान पर विद्यमान हो तो इस दिखावे की आवश्यकता क्या है?

कागद लिखै सो कागदी, कि व्यवहारी जीव ।
आतम दृष्टि कहा लिखै, जित देखे तित पीव ।।

कबीर ने अपने प्रिय की उपस्थिति उसी प्रकार सर्वत्र मानी है जिस प्रकार अद्वैत भावना के पोषक प्रतिबिम्बवाद में। वे भी ईश्वर की सर्वव्यापकता को गहराई से अनुभव किया करते थे।

ज्यूं जल में प्रतिबिम्ब, त्यूं सकल रामहि जानी जै ।

इस्लाम और सूफी मत के अनुसार उनकी अद्वैत भावना से यह स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है कि उनका ब्रह्म निर्गुण निराकार है।

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहिं तथ कथ्यौ ज्ञानी ।।

जाके मुंह माथा नहीं, न ही रूप सुरूप ।
पुहुप बास ते पातरा ऐसा तत्व अनूप ।।

जिस प्रकार सूफी संत ईश्वर मिलन न होने पर तड़प की अनुभूति करते हैं, उसी प्रकार संत कबीर के काव्य में यह तड़प प्रत्यक्ष है।

गूंगा हुआ बावला, बहरा हुआ कान ।
पाँऊ थें पंगुल भया, सतगुरु मारा बान ।।

कै बिरहणी कूं मीच दै, कै आपा दिखलाए ।
आठ पहर का दाझणा, मो पै सहा न जाए ।।

सूफी संतों की भांति संत कबीर की भक्ति में निष्काम भाव है। यदि उन्हें ईश्वर प्राप्त भी हो जाएं तो उनसे वे किसी कामना-सिध्दि (सांसारिक सुख-भोग) की बात नहीं सोचते। उनकी एकमात्र कामना है, ईश्वर को अपने नैनों में बिठाने की।

नैनन की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय ।
पलकन की चिक डारिकै, पिय को लेऊं रिझाय ।।

सूफी मत के अनुरूप भक्ति में काम और इच्छाओं के संत कबीर घोर विरोधी हैं। अतः उन्होंने अन्त समय में भी ईश्वर में ही ध्यान लगाने की बात कही है।

कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाती ।
तेल घटया बाती बुझी, सोवेगा दिन राति ।।

सूफी मत के अनुसार ही कबीर की भक्ति में भी पुस्तकीय ज्ञान का कोई महत्व नहीं है। उनका विश्वास था कि ईश्वर में लगायी अटूट लय ही मुक्ति के लिये काफी है। भक्त

के लिये तो बस इतना ही पर्याप्त है कि वह विषय वासनाओं से मुक्त हो ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त करे।

पोथि पढ पढ जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेम का, पढे सो पंडित होय ।।
कबीर पढिवा दूर कर, पोथी देय बहाय ।
बावन आखर सोध कर, रमैं ममैं चित्त लाय ।।

सूफी संतों के हृदय में प्रत्येक के लिए संवेदना रहती है। उसी प्रकार संत कबीर की भक्ति में भी कोई भेदभाव नहीं। भक्ति के द्वार सबके लिये खुले हैं। सबकी रचना उन्हीं पंच तत्वों से हुई है और सबका रचयिता वही पिता परमात्मा है।

जाति पांति पूछै नहिं कोई । हरि को भजै सो हरि का होई ।।

डॉ साहेब ने बताया कि संत कबीर की ईश्वर भक्ति को उस समय के मुल्लाओं ने इस्लाम विरोधी ठहराया और दिल्ली के सम्राट शहंशाह लोधी को उन्होंने संत कबीर को मृत्यु दंड देने के लिए उकसाया। सम्राट को लगा कि अगर उसने संत कबीर को मृत्यु दंड का आदेश नहीं दिया तो सारे राज्य में मुसलमान विद्रोह कर देंगे। उसने सैनिकों को आदेश दिया कि संत कबीर को पकड़कर उसके सामने उपस्थित करें। सैनिकों ने संत कबीर की महिमा सुन रखी थी। वह संत कबीर जी को बंदी बनाने के लिए तैयार नहीं थे, परन्तु सम्राट के आदेश की अवहेलना भी तो नहीं कर सकते थे। संत कबीर को सम्राट के दरबार लाया गया और उसने उन्हें मृत्यु दंड का आदेश दिया। सम्राट ने उन्हें मदिरा से मस्त हाथी के समक्ष जँजीरें बाँधकर डालने का आदेश दे दिया। इस दृश्य को देखने के लिए पूरा शहर उमड़ पड़ा। संत कबीर जी के श्रद्धालु ईश्वर का स्मरण कर रहे थे। कोतवाल को पूरा विस्वास था कि यह मदिरा से मस्त हाथी अवश्य ही संत कबीर को कुचल देगा। संत कबीर जी ने इस सारी घटना को अपने शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है।

भुजा बांधि भिला करि डारिओ। हसती क्रोपि मूंड महि मारिओ।।
हसति भागि कै चीसा मारै। इआ मूरति कै हउ बलिहारै।।
आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोरु। काजी बकिबो हसती तोरु।।

रे महावत तुझु डारउ काटि।इसहि तुरावहु घालहु साटि।।
हसति न तोरै धरै धिआनु। वा कै रिदै बसै भगवानु।।
किआ अपराधु संत है कीन्हा। बांधि पोट कुंचर कउ दीन्हा।।
कुंचरु पोट लै लै नमसकारै। बूझी नहीं काजी अंधिआरै।।
तीनि बार पतीआ भरि लीना।न कठोरु अजहू न पतीना।।
कहि कबीर हमरा गोबिंदु। चउथे पद महि जन की जिंदु।।

हाथ पैर बांधकर जब हाथी के आगे संत कबीर को डाला गया, तो हाथी चीखें मारता हुआ भागता हुआ संत कबीर की ओर आया। उसकी चीखें ऊँची थीं। हाथी का आना देखकर कबीर जी ने मन ही मन विचार किया, 'हे परमात्मा, मैं तेरी मूर्ति पर बलिहारी जाता हूँ। हाथी के रूप में ही हे प्रभु, आप मूर्तिमान होकर प्रत्यक्ष प्रगट हुए हैं। वाह मेरे मालिक, तू कितना ऊंचा है? इस निरर्थक भक्त को डराने के लिए कहर के साथ आ रहा है।'

काज़ी क्रोध से कह रहा था कि हाथी को आगे बढ़ाओ। किन्तु हाथी कबीर जी के पास आकर धीमा पड़ गया। उसके दिल में भी परमात्मा का अंश है और वह नहीं चाहता था कि कबीर जैसे भक्त को कोई हानि पहुंचे। इस संत का क्या दोष है जो इस प्रकार बाँधकर मेरे आगे डाला गया है? उस परमात्मा की लीला का कोई अंत नहीं है। पशु भी उसका आदर-सत्कार करते हैं। हाथी ने कबीर जी को नमस्कार किया और अपना पैर कबीर जी पर नहीं रखा। यह देखकर लोगों ने तालियाँ बजाईं, और परमात्मा का धन्यवाद किया। यह कौतुक देखकर भी काज़ी को ज्ञान न हुआ। वह महावत को अभी भी आदेश देता रहा, 'महावत, हाथी को आगे बढ़ाओ।' हाथी को महावत ने कुँडा मारकर इंकित किया कि वो कबीर जी को कुचल दे। पर हाथी तो कबीर जी के आगे माथा टेक रहा था। जब दो तीन कुँडे मारे तो हाथी को क्रोध आ गया और वह पागल होकर आवेश से उधर मुड़ गया जिधर काज़ी, मुल्ला और सरकारी सैनिक थे। वहाँ पर जाकर उसने ४ काज़ी मार दिए, सैनिक कुचल दिए और महावत को धरती पर पटकर जँगल की ओर भाग गया। सबने कहा कि कबीर जी की भक्ति शक्ति रूप में प्रकट हुई है। सैनिक घबराए हुए सम्राट लोधी के पास पहुँचे और सारी घटना सुनाई। वह भी डर गया और बुरी तरह घबरा गया। उसे प्रतीत हुआ कि वह हाथी मर गया है और उसकी आत्मा उसे लेने के लिए उसकी ओर आ रही है। इस विचार से उसका शरीर काँपने लगा। उसने घबराकर कहा कि शीघ्र ही मुझे संत

कबीर जी के दर्शन कराओ। सम्राट के दिल से क्रोध का नाश हो चुका था। वह सोचने लगा कि सचमुच ही उससे त्रुटि हुई है। संत कबीर ईश्वर की दरगाह में पूजित फ़कीर हैं। अगर उन्होंने श्राप दे दिया तो मुझे कोई नहीं बचा सकता। जब सम्राट के सैनिक संत कबीर जी को ढूंढते हुए काशी पहुंचे तो वह गँगा किनारे समाधी लगाकर बैठे हुए थे। संत कबीर जी ने आँखें खोली और उन्होंने सैनिकों से पूछा, 'कहो भक्तो, क्या सम्राट ने हमें फिर बुलाया है?' सैनिकों ने कहा, 'महाराज, आप तो अर्न्तयामी हैं। आपने सब जान लिया है।' संत कबीर जी ने कहा, 'सैनिकों, तुम्हारे सम्राट अब कौन सा दंड देना चाहते हैं?' सैनिकों ने कहा, 'दंड नहीं, वह तो आपसे क्षमा माँगना चाहते हैं। वह आपका सत्कार करना चाहते हैं।' संत कबीर जी बोले, 'भक्तो, हम संतों का सत्कार कौन करता है? वो तो मेरे ईश्वर की लीला है।' संत कबीर जी तब सम्राट के पास पहुँचे। सम्राट ने कबीर जी को आते देखकर उनके चरण स्पर्श करना चाहा। संत कबीर जी ने उसे रोक लिया। सम्राट धन्य हो गया। उसने क्षमा माँगते हुए कहा, 'क़ाज़ी और मुल्ला ने आप पर अभियोग लगाया था कि आप इस्लाम के विरुद्ध कार्य कर रहे हो। लेकिन मैंने अब जान लिया कि आप तो वली हो। ईश्वर आपके साथ हैं। इस मूर्ख व्यक्ति को क्षमा करो।' संत कबीर जी ने सम्राट को तब सूफी मत का उपदेश किया। संत कबीर जी जब सम्मानित होकर काशी लौटे तो सभी अत्यंत प्रसन्न हुये।

इसी तरह की अनगिनत चमत्कारिक कहानियां संत कबीर के जीवन से जुड़ी हैं।

जब संत कबीर ने निश्चय कर लिया कि अब उनका महासमाधि लेने का समय निकट आ गया है तो वह काशी छोड़ मगहर चले गए। उस काल में कुछ ऐसा मिथ्या अंध-विश्वास था कि जो काशी में मरता है, उसे स्वर्ग मिलता है, और जो मगहर में मरता है, उसे नर्क। संत कबीर जी ने कहा, 'स्वर्ग या नर्क किसी स्थान पर जन्मने या मरने से नहीं मिलते। वह तो नर नारी के अपने कर्मों के फल से मिलते हैं। अगर मैंने अच्छे कर्म किए हैं, तो मुझे मगहर में मरने से भी स्वर्ग ही मिलेगा।'

जब उन्होंने महासमाधि ले ली तो हिन्दू और मुसलमानों में झगड़ा होने लगा। हिन्दू उनके शरीर को अग्नि में प्रज्वलित कर अग्निदेव को समर्पित करना चाहते थे क्योंकि वह हिन्दू वैष्णव गुरु स्वामी रामानंद जी के शिष्य थे और उनके अनुसार उन्हें ब्रह्मत्व की प्राप्ति थी। मुसलमान उन्हें इस्लाम धर्म के अनुसार दफनाना चाहते थे क्योंकि जन्म से वह मुस्लिम थे। लगभग युद्ध होने की स्थिति पैदा हो गयी थी। माना जाता है

कि तभी एक आकाशवाणी हुई कि उनके मृत शरीर पर रखी हुई चादर हटाई जाए। उन्होंने जब चादर हटाई तो वहां उपस्थित सभी लोगों को बड़ा अचंभा हुआ। उनके शव के स्थान पर केवल पुष्प थे। संत कबीर के पार्थिव शरीर का नामों निशान नहीं था। संत कबीर ने अपने मरने के बाद भी धर्म के नाम पर किये झगड़े को सुलझा दिया था। इसके बाद दोनों पक्षों ने पुष्पों को दो भाग में बांटा। मगहर में ही मुस्लिम अनुयायियों ने उनकी 'मज़ार' बनाई, और हिंदू अनुयायियों ने समाधि। दोनों ही पक्ष अपने अपने धार्मिक रीतिओं के अनुसार तब उनकी आराधना करने लगे। समाधि और मज़ार की दीवार आपस में जुड़ी हुई हैं। जहां हिन्दू समाधि पर फूल आदि अर्पण करते हैं, घंटे बजाते हैं, वहां मुस्लिम मज़ार पर चादर चढ़ाकर अपनी आस्था प्रकट करते हैं।

डॉ कैफ़ साहेब ने १२वीं शताब्दी के प्रसिद्द सूफी संत ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती के बारे में भी विस्तृत विवरण दिया। उन्होंने अजमेर में 'चिश्तिया' परंपरा की स्थापना की। ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती सन ११९५ में मदीना से भारत आए थे। भारत में अपना समस्त जीवन अजमेर में रहते हुए ही लोगों के दु:ख-दर्द दूर करते हुए बिता दिया। वे सदैव ईश्वर से यही प्रार्थना करते थे कि वह सभी भक्तों का दुःख-दर्द उन्हें दे दे, तथा भक्तों के जीवन को प्रसन्नता से भर दे। सूफी संत चिश्ती समुदाय ईश्वर भक्ति गायन के माध्यम से ही दर्शाते थे। उनके समारोहों में संगीत बजता रहता था। स्थानीय हिन्दू राजा भी मोईनुद्दीन चिश्ती साहब के प्रवचनों से मुग्ध थे, और यह हर संभव प्रयास करते थे कि उन पर कोई कष्ट या आपदा न आने दी जाए।

वह हुसैन इब्न अली को अपने इष्ट के रूप में मानते थे। अपनी अर्चना में उन्होंने कई काव्य रचनाएं कीं, जिसमें अति प्रसिद्ध रचना निम्न है।

शाह अस्त हुसैन, बादशाह अस्त हुसैन।
दीन अस्त हुसैन, दीनपनाह अस्त हुसैन।।
सरदाद न दाद दस्त दर दस्त ए यज़ीद।
हक़्क़ाक़-ए बिना-ए ला इलाह अस्त हुसैन।।
शाह अस्त हुसैन, बादशाह अस्त हुसैन।

(शाह हैं हुसैन, सम्राट हैं हुसैन, धर्म हैं हुसैन, धर्मरक्षक हैं हुसैन। अपना सर भेंट किया, मगर हाथ नहीं भेंट किया। यज़ीद में सत्य है कि हुसैन ने शहादा की नींव रखी। शाह हैं हुसैन, सम्राट हैं हुसैन।)

हजरत ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती जब प्रथम बार अजमेर आए तो एक बड़ी ही रोचक घटना घटी। यह घटना उनके सिद्ध पुरुष होने की मान्यता देती है। उस समय अजमेर पर राजा पृथ्वीराज चौहान का शासन था। जब हज़रत ग़रीब नवाज़ अपने साथियो के साथ अजमेर पहुंचे तो उन्होंने अजमेर शहर से बाहर एक जगह पेड़ों के नीचे अपना ठिकाना बनाया। राजा पृथ्वीराज के सैनिकों ने ख़्वाजा को वहां से चले जाने को कहा क्योंकि यह स्थान राजा पृथ्वीराज के ऊंटो के बैठने का था। ख़्वाजा ने विनीत भाव में कहा, 'कोई बात नहीं, ऊंट भी यहां बैठ सकते हैं और हम भी यहां निवास कर सकते हैं।' लेकिन सैनिकों ने उन्हें और उनके साथियों को वहां डेरा डालने नहीं दिया। 'ठीक है', कहकर ख़्वाजा जी अपने साथियों के साथ वहां से उठकर तब चले गए। ख़्वाजा जी ने अन्ना सागर झील के किनारे तब अपना ठिकाना बनाया। यह जगह आज भी ‘ख़्वाजा जी का चिल्ला’ के नाम से जानी जाती है। अब आगे की कथा सुनो।

ऊंट प्रतिदिन की तरह अपने स्थान पर आकर बैठे। अब वह बैठ तो गए लेकिन जब उन्हें उठाने का समय आया तो उठाए से उठे ही नहीं। सैनिकों ने उठाने के सारे प्रयास कर लिए परंतु ऊंट वहां से उठकर न दिए। राजा के सैनिक परेशान हो गए। तुरंत दौड़ कर राजा जी के पास पहुंचे और इस सारी घटना की सूचना उन्हें दी। राजा पृथ्वीराज यह बात सुनकर स्वयं विस्मित हो गए। उन्होने सैनिकों को तुरंत आदेश दिया कि जाओ, उन फ़क़ीर से क्षमा मांगो। तब सैनिक शीघ्र दौड़ कर अन्ना झील पर आए जहां ख़्वाजा जी ठहरे हुए थे। सैनिकों ने ख़्वाजा जी से क्षमा माँगी। विनीत ख़्वाजा ने उन्हें तुरंत क्षमा कर दिया और कहा, 'अच्छा जाओ, ऊंट खडे हो गए हैं।' सैनिक प्रसन्नता से ऊंटों के पास आए। उनकी प्रसन्नता विस्मयता में बदल गई जब उन्होने आकर देखा कि सभी ऊंट खडे हो गए थे। धीरे धीरे अजमेर और आस पास के क्षेत्र में ख़्वाजा जी की प्रसिद्धि फैल गई।

ख़्वाजा जी ने ईश्वर प्राप्ति के साधन बताते हुए अनमोल शिक्षाएं दीं। उन्होंने मनुष्य के जीवन का लक्ष्य ईश्वर से प्रेम और ईश्वर प्राप्ति ही बताया। ईश्वर प्रेम साधना से ही

प्राप्त हो सकता है। यह साधना कैसे संभव है, ख़्वाजाजी ने इसके मूल सिद्धांतों से अवगत कराया।

ख़्वाजा जी की दी हुए शिक्षाओं के कुछ अंश यहां प्रस्तुत हैं।

१. यदि आप के पास प्रभूत मात्रा में धन, खाद्यान एवं वस्त्र हों तो उन्हें निर्धनों में वितरण कर देना चाहिए।

२. अपने मुख से कभी किसी के लिए अपशब्द नहीं बोलने चाहिए। यदि कोई तुम्हें कष्ट देता है तो उससे बदला लेने की भावना न रखते हुए ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह उसे सन्मार्ग दिखाएं।

३. यदि आपके अंदर सद्कार्य करने की प्रवृति जाग रही है अथवा आप किसी को सद्कार्य करते हुए देखते हैं तो यह निश्चय है कि आप के ऊपर अथवा उस व्यक्ति के ऊपर ईश्वर की विशेष कृपा है।

४. किसी बुरे कार्य का मस्तिष्क में विचार आते ही ईश्वर के क्रोध का स्मरण करना चाहिए। अगर त्रुटि से कोई बुरा कार्य आपके द्वारा हो गया है तो तुरंत ईश्वर से उसके लिए क्षमा माँगते हुए फिर उस बुरे कार्य की पुनरावृत्ति कभी नहीं करनी चाहिए।

५. व्यक्ति को यथा संभव मौन रहना चाहिए तथा तभी बोलना चाहिए जब आवश्यक हो। जहां तक हो सके या तो समाज उत्थान के लिए अथवा ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए ही मधुर शब्द अथवा काव्य बोलने चाहिए।

६. सदैव संतों की संगति एवं बड़ों का सम्मान करना चाहिए।

७. अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण करने का पूर्ण प्रयास करना चाहिए।

८. विद्या को चहुँ ओर निःशुल्क फैलाना चाहिए।

९. सच्चे मित्र की मित्रता में अगर जीवन भी देना पड़े तो देने में हिचकना नहीं चाहिए।

१०. विनम्रता ही मनुष्य को ईश्वर से जोड़ती है। भक्ति और तपस्या भी तभी फलीभूति होती है जब मनुष्य के हृदय में दया और विनम्रता की भावना जाग्रत हो जाती है।

११. वही नर-नारी ईश्वर का कृपा-पात्र बन सकता है जिसके हृदय में नदी जैसी दानशीलता, सूर्य जैसी दयालुता और पृथ्वी जैसी सहनशीलता हो।

१२. संत का हृदय ईश्वर प्रेम में जलती हुए आग की भट्टी की तरह है जिसमें सांसारिकता के विचार जलकर भस्म हो जाते हैं।

१३. निर्धन और बेसहारा लोगों की मदद करना, भूखे को खाना देना, बीमार और पीड़ित लोगों का सहारा बनने के समान कोई पूजा नहीं है।

१४. जिस प्रकार जल जब तक नदी में रहता है, शोर करता है, परन्तु समुद्र में मिलने के पश्चात शांत हो जाता है, उसी प्रकार ईश्वर की भक्ति में लीन होने पर हृदय शांत हो जाता है।

१५. मृत्यु का विचार तो न करो परन्तु मृत्यु को सदैव स्मरण रखो। यह नाशवान शरीर एक दिन धूल में ही मिल जाएगा, यह कभी नहीं भूलो।

१६. केवल और केवल प्रिय सत्य ही बोलो। असत्य चाहे प्रिय अथवा कड़वा, कभी न बोलो।

डॉ कैफ़ साहेब का मानना था कि ख़्वाजा चिश्ती जी एक अपरंपरागत मुस्लिम संत थे। उन्होंने भारत के वेदांत दर्शन और बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन किया था। वे भारत के विभिन्न सनातन धार्मिक मठों से सम्बन्ध बनाए रहते थे एवं भारत के महान संतों और द्रष्टाओं के संपर्क में रहते थे। उन्होंने भारतीय सनातन धर्म को बहुत निकट से देखा और और इसके आंतरिक मूल्यों को जाना। तदनुसार उन्होंने सूफी इस्लामिक दर्शन का विकास किया जिसने 'सूफी चिश्ती आंदोलन' को जन्म दिया।

अतः ख़्वाजा चिश्ती जी का सूफी आंदोलन इस्लाम पर एक सनातन हिंदू धर्म के प्रभाव स्वरुप ही है। इस आंदोलन ने मुसलमानों और हिंदुओं दोनों को प्रभावित किया, और इस प्रकार दोनों के लिए एक साझा मंच प्रदान किया। हालांकि सूफी मुस्लिम धर्मनिष्ठ थे, फिर भी वे रूढ़िवादी मुसलमानों से भिन्न थे। डॉ साहेब का मत था कि सूफी इस्लाम आंतरिक शुद्धता में विश्वास करता है जबकि रूढ़वादी इस्लाम बाहरी आचरण में विश्वास करता है। जैसा कि सनातन धर्म की आस्था है, उसी प्रकार प्रेम और भक्ति के माध्यम से भगवान के साथ मानव आत्मा का मिलन सूफी संतों की शिक्षाओं का सार था। उनके मत में ईश्वर का प्रेम संसार और सांसारिक सुखों के त्याग से संभव था। वे एकांत जीवन जीते थे।

इसी मतानुसार सूफी संत हज़रत ख़्वाजा जी ने नमाज़, हज़ और ब्रह्मचर्य इत्यादि को अधिक महत्व नहीं दिया। इस कारण रूढ़िवादी मुसलमान उन्हें मुसलमान मानने तक से मना करते रहे। संत चिश्ती जी गायन और नृत्य को परमानंद की स्थिति को प्रेरित करने का उपाय मानते थे।

ख़्वाजा चिश्ती जी जीवन भर निर्धनों की मदद करते हुए ९७ वर्ष की आयु में सन १२२७ में ईश्वर में लीन हो गए। अजमेर में ही उनकी मज़ार बनाई गई। उनकी समाधि लेने के पश्चात भी उनकी आत्मा निर्धनों एवं अन्य आवश्यक इच्छुक व्यक्तियों की मदद करती रही है। इन इच्छुक व्यक्तियों में केवल निर्धन लोग ही नहीं थे, परन्तु नवाबों और सम्राटों को भी जब आवश्यकता हुई और उन्होंने मदद के लिए ख़्वाजा जी को हृदय से पुकारा, तब उन सब की ख़्वाजा जी ने मदद की।

इतिहास साक्षी है कि भारत के १६वीं सदी के मुग़ल सम्राट मोहम्मद जलालुद्दीन अकबर को कोई संतान नहीं थी। सम्राट अकबर ने संतान प्राप्ति की दशा में बड़े प्रयास किए परन्तु निष्फल रहे। तब वह ख़्वाजा चिश्ती के पौत्र ख़्वाजा सलीम चिश्ती के पास अजमेर आए। ख़्वाजा सलीम चिश्ती ने अपने दादा ख़्वाजा चिश्ती की प्रार्थना कर उन्हें उनसे आशीर्वाद दिलवाया, जिससे सम्राट अकबर को पुत्र प्राप्ति हुई। बाबा ख़्वाजा सलीम चिश्ती के नाम पर उसने अपने पुत्र का नाम सलीम रखा। बाबा ख़्वाजा सलीम चिश्ती के सम्मान में तब सम्राट अकबर ने फ़तेहपुर सीकरी में बुलंद द्वार (दरवाज़ा) बनवाया था, और फ़तेहपुर सीकरी को अपनी राजधानी भी बनाया। कहते हैं कि ख़्वाजा चिश्ती का धन्यवाद करने सम्राट अकबर आगरा से अजमेर तक नंगे

पैर पैदल चल कर गया। पुत्र प्राप्ति के पश्चात भी हर वर्ष सम्राट अकबर ख़्वाजा चिश्ती की मज़ार पर अजमेर जाता रहा।

ख़्वाजा चिश्ती जी के उदार हृदय ने यतिन को अत्यंत प्रभावित किया। यह वह समय था जब यतिन अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से स्नाकोत्तर की पढ़ाई कर रहा था। यतिन का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। उसे गंभीर रूप से दमा ने ग्रस्त कर रखा था। दमा के कारण वह रात रात भर सो नहीं पाता था। इसी बीमारी के कारण वह स्नातक परीक्षा में अच्छे अंक नहीं ला पाया था। उसे द्वितीय श्रेणी से ही संतुष्ट करना पड़ा था। लेकिन अगर स्नाकोत्तर परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त नहीं हुए, और प्रथम श्रेणी प्राप्त नहीं हुई तो भविष्य अवश्य अंधकार में था। यतिन विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी अस्पताल से निरंतर औषधियां लेता रहता था। यह अंग्रेज़ी औषधियाँ उसके दमा पर तो अवश्य नियंत्रण कर लेती थीं परन्तु उसे अत्यंत निर्बल एवं निरुत्साह कर देती थीं। उसने भी ख़्वाजा चिश्ती जी की आराधना की और मन में ऐसा दृढ़ संकल्प किया कि उसके स्वास्थ्य में प्रगति होने पर वह अवश्य ही अजमेर शरीफ़ उनकी दरगाह पर जाएगा। संयोग कहिए अथवा ख़्वाजा जी का आशीर्वाद, उसी के छात्रावास में निवास करने वाले एक अन्य छात्र मोहम्मद ग़फ़ूर से उसकी मित्रता हो गई। ग़फ़ूर साहेब के बड़े भाई हकीम सुलतान साहेब अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अजमल खान तिब्बिया कॉलेज में एक प्राध्यापक थे। अजमल खान तिब्बिया कॉलेज यूनानी औषधियों का विशेषज्ञ संस्थान है जहां बी यू एम् एस की उपाधि दी जाती है। हकीम सुलतान साहेब ने तब यतिन को कॉलेज के यूनानी अस्पताल में प्रवेश कराया और उसकी प्राकृतिक रूप से यूनानी औषधियों से चिकित्सा की गई। ऐसा तो नहीं हुआ कि यतिन का दमा पूर्णतः समाप्त हो गया परन्तु उसे बहुत राहत मिली। अब वह अपनी पढ़ाई पर ध्यान केन्द्रित करने की स्थिति में था। परिणाम स्वरूप उसे स्नाकोत्तर के प्रथम वर्ष में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त हुए। यह उसके प्राध्यापकों के लिए भी एक अत्यंत आश्चर्य का विषय था। जो यतिन कठिनता से उत्तीर्ण होने के अंक ला पाता था, उसको प्रथम श्रेणी के अंक! उन्हें विश्वास ही नहीं होता था।

अब बारी थी अजमेर शरीफ़ जाकर ख़्वाजा चिश्ती जी को आभार प्रकट करने की। यह ७०वें दशक का दौर था। यतिन के भाई उसे विश्वविद्यालय में व्यय हेतु प्रति महीने रूपए १५० भेजा करते थे। अब रुपये ८० तो भोजन के लिए विश्वविद्यालय में हिन्दू छात्रों द्वारा चलाए विशेष शाकाहारी रसोई के लिए चले जाते थे, बचे रूपए ७०,

जिनमें और सब महीने के व्यय का प्रबंध करना होता। हाथ बहुत तंग ही रहता था। इतना पैसा कहाँ कि यतिन अजमेर शरीफ़ आ जा सके। अतः उसने पैसे बचाने का सोचा। उस समय छात्रावास द्वारा चलाए हुए रसोई का केवल रूपए ४५ महीने का ही व्यय था। वह विश्वविद्यालय द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त रसोई थी। खाने की गुणवत्ता तो बदतर थी, परन्तु पैसे बचाने का यह एक संभव उपाय था। यतिन ने यही किया और छात्रालय की रसोई से खाना प्रारम्भ कर दिया।

कुछ महीनों में इतने पैसों की बचत हो गई कि अजमेर शरीफ जाया जा सके। उन दिनों प्रतिदिन केवल एक राजस्थान रोडवेज की बस सेवा सीधी अलीगढ़ से अजमेर जाती थी। लगभग ४५० किलोमीटर का सफर था जो १० से १२ घंटे में तय होता था। बस सुबह ही ७ बजे अलीगढ़ बस स्टैंड से निकलती थी। असलम और डॉ साहेब दोनों ही यतिन को अजमेर जाने के लिए बस स्टैंड तक छोड़ने आए। इस आशंका से कि कहीं बस स्टैंड थोड़ी भी देरी से पहुंचने पर बैठने का स्थान उपलब्ध न हो, यतिन, असलम और डॉ साहेब बस स्टैंड सुबह ६ बजे ही पहुंच गए। टिकट खिड़की से सुबह ६:३० बजे टिकट लेकर यतिन बस में बैठ गया। यतिन को गलियारे वाली अच्छी सीट मिल गई। असलम और डॉ साहेब तो वापस विश्वविद्यालय चले गए, और यतिन प्रतीक्षा करने लगा बस के चलने की। यद्यपि बस में केवल ५५ स्थान ही बैठने के थे, लेकिन ७ बजने तक जैसे सवारीओं का एक सैलाव ही आ गया। यतिन ने अनुमान लगाया कि संभवतः ७५ से ८० तक सवारीओं होंगी। सांस लेने की भी जगह नहीं थी बस में। लगभग ७:१५ बजे बस स्टैंड से निकल रेंगनी प्रारम्भ हुई। अनगिनत सवारीओं के पास टिकट नहीं थे, अतः कंडक्टर साहेब उन्हें टिकट देने में व्यस्त हो गए। ऐसा नहीं लगता था कि कंडक्टर साहेब को बस में बैठने के स्थान से इतनी अधिक सवारीओं को लेकर कोई आपत्ति हो। यद्यपि यतिन का दम घुंट रहा था, पर इस आशा में कि शीघ्र ही जब बस अपनी गति से चलेगी तो हवा के झोंकों से यह घबराहट बंद हो जाएगी, वह आंख मूंदकर अपने ईश्वर का नाम लेकर किसी प्रकार बैठा रहा। उसकी आशा शीघ्र ही फलीभूत हो गई। बस अब सड़क पर अपनी पूरी गति से दौड़ रही थी। बड़े झटके लग रहे थे। लगता है सड़क की हालत ठीक नहीं। यतिन के समीप खड़ी महिला बार बार उसके ऊपर गिर पड़ती थीं। यतिन ने कुछ क्रोध में उन महिला की ओर देखा। महिला बुर्क़े में थीं लेकिन उन्होंने मुख से बुर्का उतार रखा था। संभवतः उन्हें भी सांस लेने में कठिनाई हो रही होगी। यतिन अचंभित हो गया। वह एक प्रौढ़ अवस्था की मुस्लिम महिला थीं और कुछ अस्वस्थ भी लग

रहीं थीं। यतिन को उनका कष्ट सहन नहीं हो पाया। तुरंत अपने स्थान से उठा और आदाब कर अपने स्थान पर उन महिला को बैठने के लिए बोला। महिला संभवतः संकोच में थीं, बोलीं, 'बेटा, मैं जानती हूँ तुम अवश्य ही स्थान ग्रहण करने के लिए बहुत शीघ्र ही बस स्टैंड आए होगे। मैं भी अक्सर शीघ्र ही बस स्टैंड आती हूँ लेकिन आज मेरे नाती ने मुझे देर कर दी। मुझे छोड़ता ही नहीं था। अतः मैं बस के समय तक ही पहुँच पाई। बहुत लंबा सफर है। तुम्हें बैठे रहने का पूरा अधिकार है।' लेकिन यतिन की बार बार प्रार्थना पर इस शर्त पर तैयार हो गईं कि हम दोनों इस स्थान को आधे आधे समय के लिए बाँट लेंगे। यतिन उनकी विनम्रता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।

इन प्रौढ़ महिला को बातें करना बहुत अच्छा लगता था। थोड़ी ही देर में सब कुछ यतिन से भी पूछ लिया कि उसका क्या नाम है, वह अलीगढ़ में क्या करता है, अजमेर क्यों जा रहा है, इत्यादि इत्यादि, और अपने बारे में भी सब कुछ बता दिया। वह मूलतः अजमेर की ही रहने वाले थीं। पति ईश्वर को प्रिय हो गए थे। अजमेर में वह अपने बड़े पुत्र के साथ रहतीं थीं। अलीगढ़ में उनका छोटा पुत्र अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में एक लिपिक था। कभी कभी वह उससे एवं उसके परिवार के साथ कुछ समय बिताने अलीगढ़ आ जातीं थीं। अभी पिछले दो महीनों से वह अलीगढ़ में ही थीं और अब वापस अपने गृह अजमेर जा रहीं थीं। उन्हें यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि यतिन अजमेर शरीफ़ के दर्शन करने जा रहा है। रास्ते में हज़रत ख़्वाजा के बारे में बहुत कुछ बताती रहीं। यतिन को आश्चर्य तब हुआ जब उन्होंने अजमेर के ही समीप हिन्दूओं के पूज्य स्थल पुष्कर और वहां पर स्थित ब्रह्मदेव के मंदिर के बारे में जानकारी देना प्रारम्भ किया, और दृढ़ता से यह वचन भी यतिन से ले लिया कि वह पुष्कर ब्रह्मदेव के मंदिर के दर्शन के लिए और वहां स्थित सरोवर में स्नान के लिए भी अवश्य जाएगा। इतना ज्ञान, हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही धर्मों का इस महिला को था जो संभवतः यतिन के लिए अचंभित करने वाला था। कोई ४ या ५ घंटे का सफर हुआ होगा कि बस जलपान हेतु सड़क से लगे एक छोटे कस्बे के समीप एक भोजनालय में रुकी। इन प्रौढ़ महिला ने, जिनको यतिन अब आंटी कह कर पुकारने लगा था, अपना बैग बैठने के स्थान पर रखा ताकि स्थान सुरक्षित रहे और अपने बच्चे की भांति यतिन का हाथ पकड़कर बस से उतर भोजनालय की ओर बढ़ीं। भोजन की दो शाकाहारी थालियों की आज्ञा दी और दोनों ने भोजन किया। यतिन तो आदर और शिष्टाचार स्वरुप दोनों ही थालियों का मूल्य देना चाहता था, लेकिन आंटी ने भारतीय

सभ्यता और संस्कृति का स्मरण दिलाते हुए यतिन को अपने पुत्र समान बताते हुए उसे पैसे नहीं देने दिए।

लगभग सांय ६ बजे तक बस अजमेर पहुँच गई। आंटी को लेने उनका बड़ा पुत्र और लगभग कोई ६ वर्ष की पौत्री रही होगी, लेने अजमेर बस स्टैंड पर आए हुए थे। यतिन उस परिवार की संस्कृति देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। सोचने लगा कि काश हमारे समस्त भारत में अपने वृद्धों का सभी इतना सम्मान करें तो यह दुनिया कितनी सुहानी बन जाए। अपनी माँ के साथ केवल दो महीने न रहने का अभाव इस पुत्र को कितना लगा होगा उसकी नम आँखे ही यह बता रहीं थीं। उस पर पौत्री का दादी से चुपक उनकी गोदी में बैठने का दृश्य तो हृदय लुभावन था। आंटी मुझे भूलीं नहीं थीं। अपने पुत्र से मेरा मिलन कराया। यह मेरा सलीम है, बड़ा पुत्र, और यह यतिन शर्मा है। शर्मा शब्द पर इतना बल दिया कि लगता है वह बताना चाहतीं थीं कि यतिन एक हिन्दू परिवार के उच्च कुल से सम्बंधित है। सलीम को बतलाया कि यतिन अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में स्नाकोत्तर का छात्र है, और ख़्वाजा बाबा एवं पुष्कर में ब्रह्मदेव का आशीर्वाद लेने आया है। बेचारे ने अपनी सीट मुझे दे दी अन्यथा मैं स्वस्थ पहुँच सकती मुझे तो इस पर भरोसा ही नहीं था। यतिन की प्रशंसा के पुल बाँध दिए। बड़ा अच्छा और सीधा लड़का है। सलीम की तुरंत जिज्ञासा जागी और पूछा, 'यतिन, अजमेर में कोई तुम्हारा जानने वाला है? कहाँ रुकोगे?' यतिन ने उत्तर दिया, ' सलीम भाई, मैं अजमेर में किसी को नहीं जानता। अगर आप कोई अथितिशाला जानते हों तो बता दें, बड़ी कृपा होगी।' सलीम बोले, ‘चिंता नहीं करो। यहां की जैन धर्मशाला का प्रबंधक मेरा मित्र है। मैं वहीं तुम्हारे रहना का प्रबंध करवा दूंगा। अभी हमारे साथ घर चलो। कुछ भोजन कर लो, फिर मैं तुम्हें जैन धर्मशाला ले चलूँगा।' यतिन को इस प्रकार एक अनजान से इतने आतिथ्य की कोई आशा नहीं थी। उसको अचम्भे पर अचम्भा होता चला जा रहा था। क्या यह बाबा ख़्वाजा द्वारा ही सब प्रबंध किया जा रहा है? आंटी ने तो आदेश ही दे दिया, ‘अधिक सोचो नहीं। चुपचाप तांगे में बैठो और चलो घर। सलीम तुम्हारी सभी व्यवस्था करा देगा।' घर आए। थोड़े ही देर में भोजन लगा। यतिन को फिर बड़ा अचम्भा हुआ। एक मुस्लिम घर में शाकाहारी भोजन! संभवतः यतिन के इस आश्चर्य को आंटी भांप गईं, बोलीं, 'बेटा, जब से मेरे शौहर ईश्वर को प्यारे हुए हैं, तब से मैंने मांसाहारी भोजन खाना छोड़ दिया है। केवल शाकाहारी भोजन ही खाती हूँ।'

भोजन पश्चात सलीम भाई यतिन को जैन धर्मशाला ले गए। वहां के प्रबंधक ने यतिन का हृदय से स्वागत किया और निःशुल्क एक कमरा एक रात्रि के लिए यतिन को दे दिया। अगले दिन प्रातः ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर, नित्य क्रिया से निवृत एवं नहा धोकर, यतिन बाबा ख़्वाजा की दरगाह पर गया और फिर वहीं से सीधा अजमेर बस स्टैंड चला गया। पुष्कर पहुँच कर ब्रह्मदेव के मंदिर और अन्य तीर्थ स्थलों का भ्रमण किया। सांय को फिर अजमेर बस स्टैंड आ गया। रात्रि की बस सेवा से वह आगरा के लिए चल दिया। सुबह आगरा पहुँच, दूसरी बस से अलीगढ़ आ गया। इस प्रकार यतिन की अजमेर और पुष्कर की तीर्थ यात्रा बड़े ही सुविधापूर्वक और आराम से संपन्न हुई।

इस अजमेर की तीर्थ यात्रा ने यतिन के हृदय पर संतों के प्रति श्रद्धा भावना गहन रूप से जाग्रत कर दी। डॉ कैफ़ साहेब से अन्य सूफी संतों के बारे में जानने की उसकी उत्सुकता और बढ़ गई। डॉ साहेब ने भी अपना हृदय खोल दिया। यतिन को दूसरे महान सूफी संत साबिर पाक के बारे में बताने लगे।

अलाउद्दीन अली अहमद साबिर, जिन्हें अलाउद्दीन साबिर कलियरी या कलियर संत के रूप में भी जाना जाता है, १३ वीं शताब्दी में एक प्रमुख सूफी संत थे। वह एक अन्य महान सूफी संत बाबा फरीद (११८८ -१२८०) के शिष्य थे। ख़्वाजा चिश्ती के आशीर्वाद से उन्होंने सूफी मत की 'सबरीया शाखा' स्थापित की। इनकी दरगाह (सूफी मकबरा) हरिद्वार के निकट पिरान कलियर शरीफ गांव में है।

साबिर पाक का जन्म अफगानिस्तान के एक शहर हरात में हुआ था। साबिर पाक की माँ के एक कथन के अनुसार उनके स्वप्न में एक दिन पैगम्बर मोहम्मद आए और उन्होंने बताया कि तुम शीघ्र ही माँ बनोगी। उन्होंने आदेश दिया कि वह अपने पुत्र का नाम अहमद रखे। बाद में हज़रत अली भी उनके स्वप्न में आए और उन्होंने अहमद के साथ नाम में अली जोड़ने को भी कहा। जब साबिर पाक का जन्म हुआ तो क्षेत्र के एक धार्मिक संत उनके घर आए। उन्होंने बच्चे साबिर पाक को गोद में लिया और उसका नामकरण किया, अलाउद्दीन अली अहमद।

साबिर पाक में जन्म से ही धैर्य और संतोष कूट कूट कर भरा हुआ था। ऐसा कथित है कि जन्म से एक वर्ष तक साबिर एक दिन मां का दूध पीते थे तथा दूसरे दिन व्रत (रोज़ा) रखते थे। इसके पश्चात साबिर एक दिन माँ का दूध पीते तथा दो दिन व्रत

करते। जब साबिर की आयु तीन वर्ष की हो गई तो उन्होंने दूध पीना छोड़ दिया। उसके बाद साबिर जौ या चने की रोटी बस जीवन यापन के लिए ही खाते थे। अधिकतर व्रत ही रखते थे। जब साबिर ६ वर्ष के हुए तो उनके पिता की मृत्यु हो गई। इस छोटी सी आयु में ही साबिर अनाथ हो गए। पिता की मृत्यु के बाद साबिर अधिकतर मौन रहने लगे। पति की मृत्यु के बाद साबिर की माँ का जीवन निर्धनता में बीतने लगा। इस निर्धनता के जीवन में रहते हुए एक दिन उन्हें अपने भाई हज़रत बाबा फरीदउद्दीन गंज शक्र का स्मरण आया और साबिर को उनके पास भेजने का विचार बना लिया। हज़रत बाबा फरीदउद्दीन गंज शक्र पाक पट्टन नाम के एक कस्बे में रहते थे जो आजकल पाकिस्तान में है। यहां आज भी बाबा फरीद की मज़ार है। साबिर की माँ उन्हें लेकर पाक पट्टन पहुच गईं। उस समय साबिर की आयु ग्यारह वर्ष थी। साबिर की माँ ने भाई फरीदुउद्दीन से प्रार्थना की कि इस अनाथ बच्चे को अपनी सेवा में ले लें। भाई ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया और साबिर वहीं अपने मामा के पास रहने लगे। जब माँ के जाने का समय आया तो उन्होंने हाथ जोड़कर अपने भाई से कहा कि साबिर बहुत ही शर्मीला और खाने पीने के मामले में बहुत लापरवाह है, अतः उसका ध्यान रखें। बाबा फरीद ने तुरंत साबिर को बुलाया और उनकी माँ के सामने ही साबिर को आदेश दिया कि वह लंगर का प्रबंध सम्हालें। लंगर का प्रबंधक कोई भूखा थोड़े ही रहेगा? भाई का यह आदेश सुनकर साबिर पाक की माँ बहुत प्रसन्न हुईं और अपने शहर लौट गईं। इसके बाद साबिर प्रतिदिन लंगर का प्रबंध देखते और वितरण करते। लंगर वितरण पश्चात साबिर अपने कमरे का द्वार बंद कर अकेले ही रहते थे। वह ईश्वर की साधना में लीन हो जाते थे। साबिर लंगर वितरण तो अवश्य करते थे, परन्तु लंगर से एक दाना भी अपने लिए नहीं लेते थे। इसी तरह बारह वर्ष बीत गए। बारह वर्ष बाद साबिर की माँ उनसे मिलने आईं। साबिर को देखते ही वह अचम्भे में पड़ गईं। साबिर का शरीर बहुत दुर्बल हो गया था। उन्होंने साबिर से इस दुर्बलता का कारण पूछा तो साबिर ने कहा कि पिछले बारह वर्ष से वह केवल वन के कंद मूल पर जीवित हैं, अन्न का भोग नहीं किया। यह सुनकर साबिर की माँ को अपने भाई पर बड़ा क्रोध आया। वह तुरंत अपने भाई बाबा फरीद गंज शक्र के पास गईं और कहा. 'आपने मेरे बेटे को खाना क्यों नहीं दिया? उसकी क्या त्रुटि थी जिसका आपने इतना कठोर दंड दिया?' तब बाबा फरीद ने तुरंत साबिर को बुलाया और पूछा, 'बेटा, यहां तो सुबह शाम लंगर चलता है। तमाम भूखे लोग यहां प्रतिदिन सैकङो की संख्या में भोजन करते हैं। तुमने इतने समय खाना क्यों नहीं खाया जबकि मैने तो तुम्हें लंगर का प्रबंधक बना रखा है?' इस पर साबिर ने उत्तर

दिया, 'मामा जी, आपने लंगर के वितरण का आदेश दिया था। मुझे लंगर से खाने का आदेश नहीं था। अतः मैं लंगर के पश्चात जंगल से जो भी कंद मूल आदि मिलते थे, उसी से अपना पेट भरने का प्रयास करता था।' भान्जे की यह बात सुनकर बाबा फरीद अचम्भे में पड़ गए। भान्जे को अपने पास बुलाया और उनका मष्तिष्क चुमा। सब को सम्बोधित कर बोले, 'यह बच्चा साबिर (संतोषी) कहलाने के लिए ही पैदा हुआ है। आज से इनका नाम अलाउद्दीन अली अहमद साबिर होगा।' इसी कारण सब लोग उन्हें साबिर कह कर पुकारने लगे ।

कुछ समय बाद साबिर की माँ को उनके विवाह की चिन्ता हुई। साबिर की माँ ने अपने भाई बाबा फरीद से प्रार्थना की कि वह अपनी बेटी ख़तीजा का विवाह साबिर से कर दें। बाबा फरीद ने तब कहा, 'साबिर तो अपने आपको ईश्वर को समर्पित कर चुका है। उसे सांसारिकता से कोई लेना देना नहीं है। अतः उसका विवाह करना उचित नहीं होगा।' भाई की बात सुनकर बहन को बहुत दुःख हुआ और वह कहने लगीं, 'आप मुझे अनाथ, निर्धन और लाचार समझकर अपनी पुत्री का मेरे पुत्र से विवाह करने को मना कर रहे हैं।' बहन की बातों से भाई के हृदय को ठेस पहुँची और उन्होने तुरंत अपनी बेटी ख़तीजा का विवाह साबिर से कर दिया। सांसारिक रस्मों के अनुसार जब ख़तीजा अपने पति साबिर के कमरे में गईं तो साबिर साधना में लुप्त थे। जैसे ही उनकी साधना टूटी और उन्होंने अपनी दुल्हन को देखा तो पृथ्वी से एक आग का शोला निकला जिसमें दुल्हन जलकर भस्म हो गईं। इस घटना से साबिर की माँ को बहुत दुःख हुआ। वह इस घटना का उत्तरदायी स्वयं को मानने लगी और सदमा सहन नहीं कर सकीं। उनका देहांत हो गया।

सन १२५३ में बाबा फरीद के आदेशानुसार साबिर पाक हरिद्वार के समीप एक गांव कलियार पहुंचे। बाबा फरीद द्वारा कलियार के रक्षक के रूप में उनका अभिषेक किया गया। तदुपरांत वे जीवन भर कलियार में रहे। सन १२९१ में उनका वहीं निधन हो गया। उनके बारे में और उनके चमत्कारों के बारे में कई कहानियां प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि उन्हें ईश्वर ने स्वयं गीता ज्ञान दिया था। मृत्यु के पश्चात भी श्वेत घोड़े पर अपनी दरगाह में आते हुए कई लोगों ने उन्हें देखा। भारत में साबरी पाक को हिन्दू मुस्लिम एकता तथा आपसी सद्भाव को दर्शाने वाले संत के रूप में देखा जाता है। उनकी दरगाह पर प्रति वर्ष लाखों की संख्या में केवल मुस्लिम समुदाय के लोग ही नहीं,

बल्कि सभी धर्मों के लोग अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए माथा टेकने आते हैं।

'अब यतिन मैं तुम्हें इस युग के महान सूफी संतों की श्रेणी में एक ऐसे संत का उल्लेख करूंगा जो हिन्दू संत भी थे और मुसलमान फ़क़ीर भी। उन्होंने सभी समुदाय के लोगों का मार्ग निर्देशन किया। शिरडी के साईं बाबा का इस श्रेणी में एक विशेष स्थान है,' बोले डॉ साहेब।

'हाँ, हाँ, डॉ साहेब, मैंने भी उनका नाम और उनके कार्य कलापों के कुछ चर्चे अपने दादा जी के मुख से सुने हैं। मुझे उनके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर अत्यंत प्रसन्नता होगी,' बोला यतिन।

डॉ कैफ़ साहेब ने बोलना प्रारम्भ किया।

ऐसा माना जाता है कि महाराष्ट्र के पाथरी (पातरी) गांव में साईं बाबा का जन्म २७ सितंबर १८३० को हुआ था। साईं के जन्म स्थान पाथरी (पातरी) पर एक मंदिर भी बना हुआ है जो इसका प्रमाण स्वरुप है। श्री शशिकांत शांताराम गडकरी की पुस्तक 'सद्गुरु साईं दर्शन - एक बैरागी की स्मरण गाथा' के अनुसार साईं के पिता का नाम श्री गोविंद भाऊ और माता का नाम श्रीमती देवकी अम्मा बताया गया है जो पाथरी के निवासी थे। पुस्तक में ऐसा विवरण है कि उनके पिता कश्यप गोत्र के यजुर्वेदी ब्राह्मण थे।

साईं का परिवार ब्राह्मण अवश्य था, परन्तु उनके पिता कर्म-काण्ड में निपुण ब्राह्मण नहीं थे। कर्म-काण्ड में निपुण न होने के कारण वह पुरोहिती नहीं कर पाते थे अतः अपना जीवन-यापन श्रमक-कार्य से ही करते थे। साईं के चार भाई और भी थे। बड़ा ही निर्धन परिवार था। साईं के माता पिता जैसे तैसे श्रमक-कार्य करके अपना और अपने पांचों बच्चों का पेट पाल रहे थे। साईं के पिता का गांव हैदराबाद निज़ाम के साम्राज्य का एक भाग था। निज़ाम के साम्राज्य में मुस्लिमों का एक हथियारबंद संगठन था जिसे रज़ाकार कहा जाता था। यह रज़ाकार हिन्दूओं को बहुत कष्ट देते थे। उनके अत्याचार जब असहनीय हो गए तो कई हिन्दूओं के साथ साईं के माता पिता ने भी वह गांव छोड़ने का निश्चय किया। वह पंढरपुर आ गए। एक बार जीविका

के लिए शहर को जाने हेतु जब उनका परिवार पंढरपुर के समीप बहती भीमा नदी को नाव से पार कर रहा था तो दुर्भाग्य से नाव पलट गई। कई यात्रीओं के साथ साईं के पिता भी भीमा नदी के आगोश में समा गए। उसी समय नदी किनारे खड़े कई लोगों ने इन डूबते हुए यात्रीओं को बचाने का प्रयास किया जिसमे एक सूफी संत वली फ़क़ीर भी थे। साईं की माता और उनके कुछ पुत्र डूबने से तो अवश्य बच गए पर अत्यंत निर्धन होने के कारण साईं की माता अपने बच्चों का पेट पालने में असमर्थ थीं। अतः फ़क़ीर वली के आग्रह पर उन्होंने अपने एक बच्चे को उन्हें सौंप दिया। उस समय साईं की आयु केवल ८ वर्ष की थी। सूफी संत फ़क़ीर वली तब उन्हें लेकर ख़्वाजा शमशुद्दीन गाज़ी की दरगाह पर इस्लामाबाद (अब पकिस्तान का एक भाग) आ गए। फ़क़ीर वली की वहां आकस्मिक मृत्यु हो गई। तब इस बच्चे को ख़्वाजा शमशुद्दीन गाज़ी की दरगाह में ही रह रहे एक अन्य सूफी संत फ़क़ीर रोशन शाह ने पालने का उत्तरदायित्व लिया। फ़क़ीर रोशन शाह बच्चे को लेकट तदुपरांत अजमेर आ गए। अजमेर में इस बच्चे ने सूफी मत से प्रभावित इस्लाम धर्म का अध्ययन किया। इसके साथ साथ ही ख़्वाजा चिश्ती की दरगाह में रहने वाले एक हक़ीम साहेब से औषधियों का ज्ञान भी प्राप्त किया। इस्लाम धर्म के पवित्र ग्रन्थ क़ुरान को भी इस बच्चे ने यहीं मुखाग्र कर लिया। कुछ समय बाद फ़क़ीर रोशन शाह इस बच्चे के साथ इलाहाबाद आए जहां दुर्भाग्य से हृदयाघात से उनका भी निधन हो गया। फ़क़ीर रोशन शाह की मृत्यु के बाद फिर से यह बच्चा अनाथ हो गया। यह बच्चा तब गंगा नदी किनारे अनाथ की तरह भिक्षा मांगकर अपना जीवन निर्वाह करने लगा। उसी समय इलाहबाद में एक संतों का सम्मेलन हुआ जिसमें नाथ सम्प्रदाय के संत भी सम्मिलित हुए थे। इस बच्चे का झुकाव नाथ संप्रदाय और उनकी शिक्षाओं की ओर हुआ। यह बच्चा तब नाथ संप्रदाय के प्रमुख से मिला। उनके साथ संत समागम और सत्संग किया। संत सम्मलेन की समाप्ति पर नाथ सम्प्रदाय के संतों ने अयोध्या की यात्रा की। यह बच्चा भी उनके साथ अयोध्या आ गया। यहां नाथ पंथ के प्रमुख ने इस बच्चे को नाथ सम्प्रदाय के शिष्य की पहचान के रूप में एक चिमटा (सटाका) भेंट किया। नाथ संत प्रमुख ने उनके कपाल पर चंदन का तिलक भी लगाया और कहा कि वे हर समय इसका धारण करके रखें। इस बच्चे ने जीवनपर्यंत तिलक धारण तो अवश्य किया, परन्तु चिमटा (सटाका) एक अपने अत्यंत प्रेमी और शिष्य हाज़ी बाबा को भेंट कर दिया। अयोध्या यात्रा के बाद नाथपंथी अपने पर डेरे चले गए। यह बच्चा फिर एक बार अकेले रह गया।

बच्चे को अपने जन्म स्थान पाथरी का कुछ कुछ स्मरण था, अतः वह चल दिया पाथरी के लिए इस आशा में कि उसकी माता अथवा परिवार का कोई सदस्य तो वहां अवश्य ही मिल जाएगा। पाथरी पहुंचने पर इस बच्चे को पता चला कि वहां उसके परिवार का अब कोई सदस्य नहीं रहता। उनके बारे में भी किसी को कुछ पता नहीं है। इस बच्चे के परिवार के घर के पास एक चाँद मियाँ का घर था। उनकी पत्नी चाँद बीबी इस बच्चे से मिलकर बड़ी प्रसन्न हुईं और उसके रहने और खाने पीने की व्यवस्था हेतु इस बच्चे को समीप के गांव सेलू (सेल्यु) के वैंकुशा आश्रम में ले गई। उस समय इस बच्चे की आयु १५ वर्ष की रही होगी। इस बच्चे से कुछ प्रश्न पूछने के बाद और उसकी प्रतिभा से प्रभावित हो तब वैकुंशा बाबा ने इस बच्चे को अपने आश्रम में प्रवेश दे दिया। बाद में इस बच्चे को उन्होंने अपना शिष्य भी बना लिया। कहते हैं कि वैकुंशा बाबा ने अपनी महासमाधि से पूर्व इस बच्चे को अपनी सारी दिव्य शक्तियां दीं। उसके पश्चात बच्चे को सब 'बाबा' नाम से सम्बोधित करने लगे।

जब यह बच्चा वैंकुशा बाबा के आश्रम में निवास कर रहा था तो एक दिन अत्यंत अप्रिय घटना घटी। वैंकुशा बाबा जब पंचाग्नि तपस्या की तैयारी कर रहे थे, उस समय कुछ मुस्लिम कट्टरपंथी लोग इस बच्चे पर ईंट-पत्थर फेंकने लगे। बच्चे को बचाने के लिए वैंकुशा बाबा सामने आ गए। इस प्रयास में उनके सिर पर एक ईंट लग गई। वैंकुशा बाबा के सिर से रक्त निकलने लगा। इस बच्चे ने तुरंत ही एक कपड़े से उस रक्त को साफ किया। वैंकुशा बाबा ने वही कपड़ा इस बच्चे के सिर पर तीन लपेटे देकर बांध दिया और कहा कि ये तीन लपेटे तुम्हें मुक्ति, ज्ञान एवं सुरक्षा प्रदान करेंगे। जिस ईंट से वैंकुशा बाबा को चोट लगी थी, इस बच्चे ने उसे उठाकर अपनी झोली में रख लिया। इसके बाद इस बच्चे ने जीवन पर्यन्त इस ईंट को अपना सिरहाना बनाया।

स्वस्थ्य होने के पश्चात वैंकुशा बाबा ने इस बच्चे को बताया कि एक बार, ८० वर्ष पूर्व, वह स्वामी समर्थ रामदास गुरुदेव की चरण-पादुका के दर्शन करने के लिए सज्जनगढ़ गए थे। वापसी में वह एक ग्राम शिर्डी में रुके थे। उन्होंने वहां एक मस्जिद के पास नीम के पेड़ के नीचे ध्यान लगाया था। उसी समय समर्थ स्वामी गुरु रामदास जी के उन्हें दर्शन हुए थे। तब समर्थ स्वामी गुरु रामदास जी नेउन्हें बतलाया था कि एक दिन मेरे शिष्यों में से एक शिर्डी में रहेगा जिसके कारण शिर्डी एक तीर्थ क्षेत्र बनेगा। वैकुंशा बाबा ने आगे कहा कि वहीं शिर्डी में मैंने समर्थ स्वामी गुरु श्री रामदास

जी की स्मृति में एक दीपक भी जलाया था जो अभी भी वहां नीम के पेड़ के नीचे एक शिला की आड़ में रखा है। इस वार्तालाप के बाद वैकुंशा बाबा ने बच्चे को तीन बार सिद्ध किया हुआ दूध पिलाया। इस दूध को पीने के बाद बच्चे को चमत्कारिक अष्टसिद्धि शक्तियों की प्राप्ति हुई और वह एक दिव्य पुरुष बन गए। उन्हें परमहंस होने की अनुभूति हुई। वैंकुशा बाबा के महासमाधि लेने के पश्चात इस बच्चे ने जिसे अब सब 'बाबा' नाम से सम्बोधित करने लगे थे, इस आश्रम में रुकने का कोई महत्व नहीं समझा और वैंकुशा बाबा के निर्देशानुसार शिर्डी की ओर चल दिए। इस समय उनकी आयु कोई २२-२३ वर्ष के लगभग रही होगी।

शिर्डी पहुँच उन्होंने अपना आसन उसी नीम के पेड़ के तले लगाया जिसका उल्लेख वैंकुशा बाबा ने किया था। कुछ समय वह शिर्डी में रहे, पर एक दिन अदृश्य हो गये।

ऐसा कहा जाता है कि बाबा शिर्डी से निकल पंचवटी गोदावरी के तट पर पहुंचे जहां उन्होंने कुछ समय तक तप किया। यहां बाबा स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती जी से मिले और उनके आश्रम पर कुछ दिनों निवास किया। तद्पश्चात वह शेगांव जा पहुंचे जहां वे गजानन महाराज से मिले। वहां कुछ दिन रुकने के बाद बाबा देवगिरी के जनार्दन स्वामी की कुटिया पर पहुंचे। वहां कुछ दिन विश्राम करने के बाद वह माणिक प्रभु के आश्रम में माणिक्यापुर चले गए। माणिक प्रभु उस समय के इस क्षेत्र के महान संत थे। उनसे सत्संग प्राप्त कर बाबा बीजापुर होते हुए नरसोबा की वाड़ी पहुंच गए। यहां बाबा ने दत्त अवतार नृसिंह सरस्वती के चरण पादुका के दर्शन किए। यहीं कृष्णा नदी के किनारे एक युवा को तपस्या करते देखा तो उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम बड़े संत बनोगे। यही युवक आगे चलकर वासुदेवानंद सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए। वासुदेवानंद सरस्वती ने मराठी में लिखित अपनी पुस्तक 'गुरु चरित्र' में इसका विवरण दिया है।

इसके पश्चात बाबा सज्जनगढ़ पहुंचे जहां समर्थ गुरु स्वामी श्री रामदास जी महाराज की चरण-पादुका के दर्शन किए। वहां से निकलकर विविध सूफी फ़क़ीरों की दरगाह, हिन्दू संतों की समाधि इत्यादि के दर्शन करते हुए बाबा अहमदाबाद पहुंच गए। यहां वह सूफी संत सुहाग शाह बाबा की दरगाह पर कुछ दिन रहे। बाबा अहमदाबाद से भगवान कृष्ण की नगरी द्वारिका जा पहुंचे। यहीं उन्होंने तय किया कि

शिर्डी में वे अपने निवास का नाम 'द्वारिकामाई' रखेंगे। द्वारिका से बाबा प्रभास क्षेत्र गए जहां भगवान कृष्ण ने अपनी देह छोड़ी थी।

अब बाबा ने निश्चय कर लिया कि समय आ गया है उनका शिर्डी में प्रवास करने का, अतः वह वापस शिर्डी चल दिए। राह में शिर्डी के पास के ही एक गांव में कुछ समय के लिए वह चाँद पाटिल के घर रहे। उन्हीं दिनों चाँद पाटिल के एक निकट सम्बन्धी की बारात शिर्डी गाँव गयी जिसके साथ बाबा भी आए। कहा जाता है कि चाँद पाटिल के सम्बन्धी की बारात जब शिर्डी गाँव पहुँची तो खंडोबा मंदिर के सामने ही बैल गाड़ियाँ खोल दी गईं, और बारात के लोग वहीं उतरने लगे। वहीं एक श्रद्धालु व्यक्ति म्हालसापति ने तरुण फकीर के तेजस्वी व्यक्तित्व से अभिभूत होकर उन्हें 'साईं' कहकर सम्बोधित किया। धीर धीरे शिर्डी में सभी लोग उन्हें 'साईं बाबा' के नाम से ही पुकारने लगे। इस प्रकार वे 'साईं' नाम से प्रसिद्ध हो गये। विवाह संपन्न हो जाने के बाद बारात तो वापस लौट गयी, परंतु बाबा नहीं लौटे। वह शिर्डी में ही एक जीर्ण शीर्ण मस्जिद में रहने लगे और जीवन पर्यन्त वहीं रहे।

साईं बाबा के शिर्डी निवास, उनके चमत्कार एवं रहन सहन की विस्तृत जानकारी श्री गोविंदराव रघुनाथ दाभोलकर द्वारा लिखित 'श्री साईं सच्चरित्र' पुस्तक से मिलती है। श्री दाभोलकर जी ने इस पुस्तक की रचना सन १९१० में साईं बाबा के जीवन काल से ही प्रारम्भ कर दी थी। सन १९१८ में उनके महासमाधी लेने के पश्चात इस पुस्तक का शिर्डी साईं संस्थान द्वारा प्रकाशन किया गया।

साईं बाबा ने अपने जीवन में सूफी मत के अनुसार 'एकेश्वरवाद' के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित किया। उनका नारा था, ‘सब का मालिक एक ईश्वर ही है’। अंधविश्वासों के विरुद्ध कर्मकांड इत्यादि से दूर सभी के दुख-दर्द हरना उनके जीवन का क्रम था। समाज के सभी वर्गों, हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई में भाईचारा स्थापित हो, यही उनका लक्ष्य रहा।

शिर्डी में साईं बाबा अपना अधिकतर समय हिन्दू संतों एवं मुस्लिम फ़क़ीरों के साथ ही बिताते थे। उन्होंने किसी के साथ कभी भी कोई व्यवहार धर्म के आधार पर नहीं किया। उन्होंने महासमाधी तक नाथ संप्रदाय के नियमों का भी पालन किया। हाथ में जल का कमंडल रखना, धूनी रमाना, हुक्का पीना, कान बिंधवाना, सिर पर चंदन

लगाना और भिक्षा पर ही निर्भर रहना, ये सब नाथ पंथी सम्प्रदाय के संतों की निशानी हैं। साईंबाबा यह सब कर्मकांड करते थे, अतः यह उनका नाथपंथी सम्प्रदाय से लगाव होना प्रमाणित करता है। इसके साथ ही साईं बाबा सिर पर सदैव कफनी बांधते थे। यह सूफी संतों का प्रतीक है जो स्मरण दिलाता रहता है कि एक दिन हम सभी को ईश्वर के पास ही जाना है। वह जीवन भर एक जीर्ण शीर्ण मस्जिद में ही रहे। साईं बाबा पूजा, पाठ, ध्यान, प्राणायाम और योग पर ध्यान न दे, समाज सेवा, विशेषकर निर्धनों की मदद करना, जड़ी-बूटियों एवं भभूती से लोगों की निःशुल्क चिकित्सा करना एवं ईश्वर से प्रेम का ही प्रचार करते थे। भोजन करने से पहले फातिहा भी पढ़ते थे। इस प्रकार वह सूफी संतों द्वारा निर्धारित सभी नियमों का भी पालन करते थे।

यह सब सुन यतिन ने सभी सूफी संतों को प्रणाम किया। उसका कवि हृदय उनकी प्रार्थना में अर्चना करने लगा।

नेत्र मूँद चिंतन करूँ, चंहु ओर दिखें त्रिसंत ।
मगन होत हिय तब, जब सुमरें नाम श्रीकंत ।।
कहत सनातन धर्म, रट ब्रह्मा विष्णु महेश ।
हृदयपट पर गए समा, सब संतन के नरेश ।।
करजोड़ विनती करूँ, हे त्रिमूर्ति भगवान ।
सदा हिय आदर रहे, हर नर संत समान ।।
करूँ शत शत नमन, निज़ामुद्दीन श्रीसंत ।
धन्य खुसरो अमीर, पा सको उनके मंत ।।
शिष्य रामानंद जी, हे संत कबीर प्रणाम ।
एकेश्वर दयामयी, ज्ञान दियो जन आम ।।
ग़रीब नवाज़ ख़्वाजा, करें दूर सब दुःख ।
जब हिय में उठत, ख़्वाजा प्रेम की भूख ।।
नमन साबिर-पाक, हैं संयम की मिसाल ।
दें लंगर भूखों को, स्वयं खाएं वृक्ष छाल ।।
वंदन शिर्डी साईं, कियो सब धर्मन में मेल ।
दीये जलाए जल से, न दियो बनियन तेल ।।

समय बीतता चला गया और यतिन ने स्नाकोत्तर परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कर ली। समय आ गया था अब अलीगढ़ को विदाई करने का। डॉ कैफ़ साहेब से विदाई लेकर, दोनों मित्र असलम और यतिन दिल्ली कूच कर गए। असलम के बड़े भाई दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। असलम दिल्ली विश्वविद्यालय से पी एच डी करना चाहता था। यतिन का मन अब आगे पढ़ने को नहीं था। वह नौकरी की अभिलाषा लिए अपने चाचा जी के पास दिल्ली आ गया।

आनन्दमयी माँ का आशीर्वाद

दिल्ली आकर यतिन ने बड़े प्रयास किए कि छोटी मोटी ही सही, उसे कोई नौकरी मिल जाए। दुर्भाग्य से उसके सभी प्रयास असफल रहे। तभी एक समाचार पत्र में उसने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली (आई आई टी दिल्ली) का एक विज्ञापन देखा जिसमें इस संस्थान से पी एच डी करने के लिए छात्रवृत्ति प्रदान हेतु आवेदन निमंत्रित किये गए थे। यतिन ने भी आवदेन कर दिया। तदुपरांत साक्षात्कार हुआ, और उसे छात्रवृत्ति मिल गई। यतिन अनमने मन से पी एच डी के अध्ययन की ओर बढ़ने लगा।

यहां यतिन की भेंट अपने एक वरिष्ठ सहयोगी डॉ अखिलेश सक्सेना से हो गई। डॉ सक्सेना जी ने हाल ही में अपनी पी एच डी थीसिस प्रस्तुत की थी और वह परीक्षकों के प्रतिवेदन की प्रतीक्षा कर रहे थे। डॉ सक्सेना बड़े ही धार्मिक विचार के व्यक्ति थे। उनका आनंदमयी माँ से विशेष लगाव था। जब भी आनंदमयी माँ दिल्ली के ओखला आश्रम में आतीं थी, वह जितना भी संभव हो सके अधिक से अधिक समय उनके साथ बिताने का प्रयास करते थे। इस बार जब आनंदमयी माँ अपने वृन्दावन आश्रम से ओखला आईं तो डॉ सक्सेना साहेब यतिन को भी वहां ले गए। यतिन माँ के मृदुल व्यवहार और साधना में डूबी हुई सौम्यता की मूर्ती के प्रति अत्यंत आकर्षित हो गया। प्रतिदिन सांय को ओखला आश्रम में भजन संगीत और माँ के दर्शन की गोष्ठी लगती थी। डॉ सक्सेना के साथ यतिन का भी वहां प्रतिदिन जाना एक क्रम बन गया। समय के साथ डॉ सक्सेना पी एच डी में उत्तीर्ण हो गए और एक बैंक में प्रबंधन अधिकारी के पद पर किसी दूसरे शहर में चले गए। यतिन को आश्चर्य तो अवश्य हुआ कि एक वैज्ञानिक बैंक की नौकरी में जाए, पर यह समय ऐसा ही था जहाँ मनचाहे अपने विषय में वैज्ञानिक का पद मिलना एक दुर्लभ कार्य था।

डॉ सक्सेना के जाने के बाद यतिन का मन भी पढ़ाई से उचाट हो गया। वह प्रयोगशाला जाता तो अवश्य था परन्तु उसका मन बिलकुल नहीं लगता था। एक दिन उसने त्यागपत्र दे ही दिया, और पहुँच गया माँ की शरण में।

जो पाठक आनंदमयी माँ के नाम से परिचित नहीं हैं, यहां में उनका संक्षिप्त परिचय देना चाहूंगा। आनंदमयी माँ का जन्म निर्मला देवी के रुप में ३० अप्रैल १८९६ को

वर्तमान समय मे बांग्लादेश के तिलोरा जनपद जो अब ब्राम्हणबेरिया के नाम से जाना जाता है, के एक गांव मे हुआ था | उनके माता पिता एक रूढ़िवादी वैष्णव ब्राम्हण थे। पिता का नाम श्री बिपिन बिहारी भट्टाचार्य और माता का नाम श्रीमती मोक्षदा देवी था। सन १९०८ में बारह वर्ष की आयु में उनका विवाह मुंशीगंज जनपद के रहने वाले श्री रमणी मोहन चक्रवर्ती से हो गया। उस समय बंगाल में बाल विवाह की प्रथा थी। निर्मला जी विवाह के बाद गृहकार्य के साथ साथ उपासना और साधना में अपना समय व्यतीत करती थीं। उनके पति को उनकी साधना के प्रति अत्यंत सम्मान था। जभी भी निर्मला के पति उनसे पत्नी स्वरुप सम्बन्ध बनाने का प्रयास करते, वह अनुभव करते थे कि निर्मला का शरीर मृत हो गया है। निर्मला जी के चहरे पर एक विशेष दिव्यता से उन्हें कुछ कुछ भान हो गया कि उनकी पत्नी ने सांसारिक कृत्य के लिए जन्म नहीं लिया। तभी एक पड़ोसी हरकुमार, जिसे सब समाज पागल ही मानता था, उसने माँ की आध्यात्मिक प्रतिभा को पहचान कर यह घोषणा कर दी कि निर्मला देवी माँ का ही रूप हैं। वह एक प्रकार से उनकी इष्टदेवी के रूप में पूजा करने लगा।

अगस्त १९२२ की पूर्णिमा की आधी रात को छब्बीस वर्षीय निर्मला जी को आत्म बोध हुआ। लोगों को विश्वास ही नहीं हुआ जब एक अशिक्षित महिला वेद वेदान्तों का ज्ञान देने लगी। जब उनसे बहुत पूछा गया कि यह ज्ञान आप को कहाँ से प्राप्त हुआ, तो बस उन्होंने इतना ही बताया कि गुरुदेव अनायास ही उनके समक्ष प्रगट हुए, और उन्होंने दीक्षा के साथ साथ यह ज्ञान उन्हें दिया।

सन १९२४ में उनके पति की नियुक्ति ढाका के नवाब के बाग़ानों के प्रबंधक के रूप में शाहबाग में हो गई। शाहबाग में निर्मला जी जभी भी मंदिर जातीं तो वहां कीर्तन में अपनी सुध बुध खोकर परमानंद में लीन हो जातीं थीं। शनैः शनैः लोग उनको आनंदमयी (परमानंद में लीन होने वाली) नाम से पुकारने लगे। सन १९२९ में रमना काली मंदिर के परिसर में आनंदमयी को लोगों ने काली माँ से वार्तालाप करते हुए सुना और तब सब उनको आदर के साथ ‘आनंदमयी माँ’ नाम से सम्बोद्धित करने लगे।

ब्रह्मनिष्ठ स्वामी परमहंस योगानंद जी ने अपने भारत दर्शन की यात्रा पर आनंदमयी माँ से भेंट की। इस भेंट का विस्तृत विवरण उन्होंने अपनी पुस्तक, 'एक योगी की आत्मकथा', में दिया है।

परमहंस स्वामी योगानंद जी अपनी पुस्तक में लिखते हैं, 'मेरी भतीजी अमिया बोस ने मुझ से आग्रह किया कि निर्मला देवी (आनंदमयी माँ) के दर्शन किए बिना वह भारत से अमेरिका के लिए प्रस्थान न करें। निर्मला देवी की यौगिक शक्ति के बारे में भी उसने मुझे बताया। उसके शहर जमशेदपुर में एक बार आनंदमयी माँ का आगमन हुआ। माँ के एक शिष्य के अनुरोध पर तब वह एक मरणासन्न मनुष्य के घर में गईं। वह उसकी शय्या के पास खड़ी हो गईं। उनके हाथ ने जैसे ही उसके माथे का स्पर्श किया, उसकी घर्र-घर्र बंद हो गई। उसकी बीमारी तत्क्षण ग़ायब हो गई। वह भी देखकर आनंदित और विस्मित हो गया कि वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो चुका था।'

'उस समय माँ कलकत्ता में हीं थीं, अतः मैं उनसे मिलने चल दिया।'

'जब मैं पहुंचा तो माँ कार द्वारा किसी और स्थान के लिए प्रस्थान कर रहीं थीं। मुझे देख कार से उतरीं। "बाबा आप आ गए", इन मधुर शब्दों के साथ ही उन्होंने मेरे गले में बाँहें डालकर सर मेरे कंधे पर रख दिया। इस संत के साथ मेरी कोई जान पहचान नहीं थी। मुझे तुरंत पता चल गया था कि आनंदमयी माँ समाधि की एक उच्च अवस्था में थीं। अपने बाह्य नारी रूप का उन्हें कोई भान नहीं रहा था। उन्हें केवल अपने परिवर्त्तनातीत आत्मस्वरूप का भान था। उस अवस्था में वह ईश्वर के एक अन्य भक्त से आनंद के साथ मिल रहीं थीं। मेरा हाथ पकड़कर वह अपनी कार में ले गईं।'

'आनंदमयी माँ, मेरे कारण आपकी यात्रा में विलम्ब हो रहा है,' मैंने कुछ विरोध दर्शाते हुए कहा।'

'बाबा, मैं कई युगों बाद इस जन्म में आपसे पहली बार मिल रहीं हूँ, इतना शीघ्र तो मत जाइये,' बोलीं माँ। हम कार की पिछली सीट पर बैठे रहे। आनंदमयी माँ शीघ्र ही निश्छल समाधि में लीन हो गईं। उनकी सुन्दर आँखे आकाश की ओर देखते देखते अर्धोन्मीलित होकर स्थिर हो गईं और आंतरिक आनंद राज्य में झांकने लगीं।'

'भारत में मुझे अनेक ईश्वर दर्शन किए हुए सिद्ध पुरुष मिले थे, परन्तु इतनी उन्नत महिला संत से मेरा पहले कभी मिलन नहीं हुआ था। उनका पवित्र मुखमण्डल अनिर्वचनीय आनंद के प्रताप से दमक रहा था। माथे पर आध्यात्मिक नेत्र के प्रतीकस्वरूप रक्तचंदन का तिलक था। आनंदमयी माँ समाधि में ही मग्न रहीं।'

उनकी शिष्या ने बताया, ‘स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी वह जातिभेद को नहीं मानतीं। उन्हें अपने शरीर का भी भान नहीं रहता। उन्हें यदि कोई भोजन न कराए तो वह भोजन ही नहीं करेंगी, न ही उसके बारे में किसी से कुछ पूछेंगी। उनके सामने भोजन रख भी दिया जाए, तब भी वह उसका स्पर्श तक नहीं करतीं। हम शिष्यागण अपने हाथों से उन्हें एक प्रकार से प्रेम भरे रूप से बलपूर्वक ही सही भोजन खिलाते हैं ताकि वह इस जगत को छोड़कर न चली जाएं। प्रायः कई दिनों तक वह समाधि में ही लीन रहती हैं। उस समय उनका श्वास बहुत ही थोड़ा सा, बिलकुल नाम-मात्र के लिए, चलता रहता है। पलकें बिलकुल नहीं झपकतीं। उनके प्रमुख शिष्य स्वयं उनके पति भोलानाथ जी हैं। अनेक वर्ष पूर्व विवाह के शीघ्र बाद ही भोलानाथ जी ने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर मौन व्रत धारण कर लिया है।‘

माँ के समाधि से जाग्रत होने पर मैंने उनसे पूछा, ‘कृपया अपने जीवन के बारे में कुछ बताइये।‘

‘बाबा, बताने समान तो कुछ अधिक नहीं है। मेरी चेतना इस नश्वर शरीर के साथ कभी एक रूप नहीं हुई। इस पृथ्वी पर आने से पहले मैं वही थी। जब मैं छोटी बच्ची थी, तब भी मैं वही थी। मैं बड़ी बनकर नारी बनी, तब भी मैं वही थी। जिस परिवार में मेरा जन्म हुआ था, उन्होंने जब इस देह का विवाह रचाने की तैयारी की, तब भी मैं वही थी। और बाबा, आपके सामने अभी मैं वही हूँ। यहां से आगे सदा के लिए मेरे चारों ओर सृष्टि का नृत्य चाहे कितना भी बदलता रहे, मैं वहीं रहूंगी, ‘ कहकर आनंदमयी माँ गहरी ध्यानावस्था में डूब गईं।

ऐसा व्यक्तित्व था, महान पवित्र आत्मबोधी आनंदमयी माँ का।

कितना भाग्यशाली था यतिन, जो माँ के चरणों में उसे स्थान मिला। माँ कभी कोई प्रवचन नहीं देती थीं। अगर उनसे कोई प्रश्न पूछे, तो हाँ, उसका उत्तर अवश्य देती थीं। प्रत्येक पुरुष को वह 'बापू' अथवा 'पिताजी' कहकर ही सम्बोधित करतीं थीं।

कुछ समय बीता। यतिन की इच्छा हुई कि माँ के चरणों में, माँ के आशीर्वाद से, वह संन्यास ले ले। एक दिन जब माँ भोजन उपरान्त विश्राम के लिए अपने शयन कक्ष में गईं तो यतिन बड़ा साहस कर माँ के पास पहुँच उनके चरणों से लिपट गया।

'क्या बात है बापू, कुछ शंका है क्या?' माँ ने बड़े प्रेम से यतिन की ओर देख प्रश्न पूछा।

'माँ, मेरा हृदय संसार त्याग कर संन्यास लेने को उत्सुक है। अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं आपके चरणों में संन्यास आश्रम स्वीकार करने की अनुमति चाहता हूँ,' बोला यतिन।

माँ बच्चों की तरह खिलखिलाकर हंसीं और बोलीं, 'पिताजी, आप का जन्म तो गृहस्थ आश्रम के लिए हुआ है, फिर आप संन्यास कैसे ले सकते हैं? मैं आपकी गुरु भी नहीं। आप तो भगवान् स्वामी रामानंद जी और उनके अनुयायी संत कबीर के जन्म जन्मान्तरों से शिष्य रहे हैं। जहां तक मैं जानती हूँ इस युग में संत कबीर का ही शिर्डी साईं के रूप में पुनर्जन्म हुआ है। वही एक दिन आपका उचित मार्ग दर्शन करेंगे।'

यतिन माँ के शब्दों को सुन स्तब्ध हो गया। अन्तर्यामी माँ तो जन्म जन्मांतरों का इतिहास जानती हैं। नत मस्तक हो गया माँ के समक्ष यतिन, और उनके चरण स्पर्श करते हुए बोला, 'जैसी आपकी आज्ञा माँ'। माँ ने अपने हाथों से छील कर एक सेब तब यतिन को आशीर्वाद स्वरुप दिया।

माँ के कक्ष से निकल यतिन अब अपने भविष्य के बारे में सोचने लगा। माँ के शब्द असत्य नहीं हो सकते। मेरे जीवन में अगर गृहस्थ आश्रम ही लिखा है तो मुझे उसके अनुकूल अपने आपको बनाना होगा। कुछ समय ही बीता होगा कि माँ ओखला के इस आश्रम से देहरादून में स्थित आश्रम में जाने को तत्पर हुईं। सभी ओखला आश्रमवाशीओं ने, जिनमें यतिन भी सम्मिलित था, माँ को भावभीनी विदाई दी।

माँ के देहरादून चले जाने के बाद यतिन प्रतिदिन इसी उधेड़ बुन में रहता कि गृहस्थ जीवन का प्रारम्भ किस प्रकार किया जाए? यह वह समय था जब नौकरी मिलना अत्यंत दुर्लभ था। यतिन नौकरी के प्रयास भी बहुत कर चुका था, परन्तु उसे निराशा ही हाथ लगी थी। अचानक उसे अपने एक वरिष्ठ मित्र डॉ लक्ष्मी नारायण पालीवाल जी का स्मरण हो आया। वैसे तो वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, लेकिन जब यतिन भारतीय प्रौद्यौगिकी संस्थान (आई आई टी) दिल्ली में पी एच डी का छात्र था, वह कुछ अनुसंधान कार्य से कुछ वर्षों के लिए संस्थान में आए हुए थे। वहीं यतिन की उनसे मित्रता हो गई थी। एक समय उन्होंने चर्चा की थी कि उनके एक मित्र और

सहपाठी श्रीवास्तव जी दिल्ली उद्योग में मुख्य प्रबंधक हैं, तथा जो युवक भारत सरकार द्वारा स्व-नियोजित योजना में लघु उद्योग स्थापित करना चाहते हैं, उस विभाग के प्रमुख हैं। यतिन ने सोचा, संभवतः डॉ पालीवाल जी की मदद से क्यों न एक किसी लघु उद्योग की स्थापना ही की जाए?

यतिन डॉ पालीवाल जी के पास पहुंचा और अपने विचारों से उन्हें अवगत कराया। डॉ पालीवाल जी सहर्ष उसे श्रीवास्तव जी से मिलवाने ले गए, और इस तरह नींव पड़ी एक विचार को कार्यान्वित करने की।

विवाह और गुरु दीक्षा

श्रीवास्तव जी ने यतिन की मदद करने का अपने अभिन्न मित्र डॉ पालीवाल जी को आश्वासन दिया, और उन्होंने ऐसा किया भी। यतिन को दिल्ली में इस कार्य के लिए निर्धारित औद्योगिक क्षेत्र में लघु उद्योग के लिए एक छोटी सी शालिका आबंटित हो गई। यतिन के पास यद्यपि उद्योग लगाने के लिए कुछ भी मुद्रा नहीं थी, लेकिन उसे एक दूर के रिश्ते के मामा ने ऐसा वचन दिया कि लघु उद्योग लगाने के लिए उसे मुद्रा की आवश्यकता नहीं। उनका एक अभियांत्रिकी उद्योग था जो उद्यमियों को उद्योग लगवाने का कार्य करता था। पहले तो यतिन को विश्वास नहीं हुआ। लेकिन वह उसी के समुदाय के एक वरिष्ठ सदस्य थे, अतः अविश्वास करने का भी कोई कारण नहीं था। भोले भाले यतिन ने उनकी बातों पर पूरा भरोसा किया और यहीं उसका पहला अनुभव हुआ सांसारिकता का। इस दुनिया में कभी किसी का नेत्र मूँद कर भरोसा नहीं करना चाहिए। यतिन को उन्होंने अपनी ही कंपनी द्वारा एक उद्योग लगाने का प्रस्ताव सरकार द्वारा संचालित इस योजना के अंतर्गत दिया, और ऋण भी मिल गया। ऋण के पैसों से उन्ही की कंपनी के द्वारा मशीनें ली जा सकती थीं अतः उन्होंने यह कार्य अपने हाथ में लिया। इन कपटीओं के हृदय से अनभिज्ञ यतिन यही सोचता रहा कि बस अब उसका लघु उद्योग लग ही जाएगा। उन्होंने मशीनों के नाम पर छल करते हुए बेकार की मशीनें यतिन के ऊपर थोप दीं।

जब यतिन उद्योग लगाने में व्यस्त था तभी उसके विवाह के लिए एक प्रस्ताव आया। यतिन यद्यपि विवाह तब तक नहीं करना चाहता था जब तक कि उसे उद्योग में सफलता न मिल जाए, लेकिन ईश्वर को संभवतः उसकी इस इच्छा की पूर्ती तक ठहरने का विचार स्वीकार नहीं था। उसका विवाह हो गया।

यतिन अत्यंत भाग्यशाली था कि उसे उसी के अनुकूल ईश्वर प्रेमी एवं उसके संघर्ष में कंधे से कंधा चलाने वाले पत्नी मिली। शीघ्र ही यतिन एक पुत्र का पिता भी बन गया।

जैसा कि आशा की जा सकती थी, मशीनों के अनुपयुक्त होने से उसका लघु उद्योग नहीं चल सका। बड़ा ही संघर्षमय समय था। अब यतिन के ऊपर पत्नी और एक बच्चे का भार भी था। आखिर यतिन ने लघु उद्योग छोड़ नौकरी करने का इरादा बनाया। उसे एक कम पारिश्रमिक वाली नौकरी मिल तो अवश्य गई, परन्तु यतिन के

व्यक्तित्व के अनुसार यह नौकरी नहीं थी। यह कंपनी लघु एवं कुटीर उद्योग के लिए मशीनें बनाने का कार्य करती थी। यतिन का कार्य कंपनी से सम्बंधित लघु एवं कुटीर उद्योग के विस्तार के लिए अनुसंधान एवं जन संपर्क था। इसके साथ ही इस उद्योग की सफलता के लिए सरकारी अधिकारीओं को कंपनी की आधार सामग्री का विवरण प्रस्तुत करते रहने का था जिससे वह उद्योग की कार्य प्रणाली से प्रसन्न रहें और निश्चय करें कि कार्य सभी सरकारी नियमों के अनुसार ही हो रहे हैं। कंपनी के कार्य संचालन में सरकारी अधिकारी किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न करें। शीघ्र ही यतिन को यह पता चल गया कि इन भ्रष्ट सरकारी अधिकारीओं को आधार सामग्री के विवरण की कोई आवश्यकता नहीं है, उन्हें तो बस कंपनी का संचालन करते रहने के लिए प्रसन्न होने को केवल और केवल घूस ही चाहिए। कंपनी के मालिक को भी इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। उसके अनुसार अगर घूस देने से इन सरकारी अधिकारीओं को उद्योग से दूर रखा जा सके, तो घूस दो और अपना व्यवसाय चलाओ। यतिन को यह नौकरी अपने परिवार के भरण पोषण के लिए अत्यंत आवश्यक थी। मरता क्या न करता। मन मारकर यह कार्य करता रहा। हाँ, प्रतिदिन आनंदमयी माँ और गुरुदेव से यह प्रार्थना अवश्य करता रहता कि उसे इस भ्रष्ट जीवन से निकालें।

इसी बीच एक दिन स्वप्न में उसे आनंदमयी माँ ने दर्शन दिए। कुछ बोलना और सन्देश देना चाहतीं थीं यतिन को, लेकिन उनके शब्द बड़े अस्पष्ट थे। यतिन तो इससे ही अत्यंत प्रसन्न था कि माँ ने उसे स्मरण किया। सुबह होते ही एक मित्र के द्वारा दुःखद समाचार मिला। माँ अब इस दुनिया में नहीं हैं। उन्होंने महासमाधी ले ली है। यतिन का हृदय अत्यंत दुःखी हो गया। उस दिन कार्यालय से छुट्टी ले वह माँ के आश्रम ओखला में गया और पूरे दिन वहीं रहा। उसे रह रह कर माँ का स्वप्न याद आ रहा था। अब उसे स्पष्ट हो गया कि माँ उसे संभवतः यही बताने आईं थीं कि वह अब इस संसार से इस नश्वर शरीर को छोड़ सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर रहीं हैं।

घर लौटने पर यतिन को माँ की पुरानी स्मृतियाँ नूतन होने लगीं। तभी उसे स्मरण आया कि माँ ने उसे उसके कई पूर्व जन्मों से चले आ रहे गुरु, गुरु परम्परा के अंतर्गत भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी महाराज, उनके शिष्य संत कबीर जी, और इस युग में संत कबीर के अंश शिर्डी साईं बाबा का उल्लेख किया था। शिर्डी साईं बाबा के बारे में उसे अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के छात्रावास निवास में डॉ कैफ़ साहेब ने

विस्तार पूर्वक बता रखा था। उसका हृदय तभी से उनके व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित था। रात्रि को सोते समय उसने माँ द्वारा निर्देशित शिर्डी साईं बाबा का स्मरण किया। उनसे प्रार्थना की कि वह उसका मार्ग प्रदर्शित करें।

प्रार्थना के पश्चात यतिन ने सोने का प्रयास किया लेकिंन जैसे निद्रा देवी तो आना ही नहीं चाहतीं थीं। मष्तिष्क पता नहीं कहाँ भ्रमण कर रहा था। माँ के एक एक वचन याद आने लगे। किसी तरह आँखे लगने लगी थीं। यह क्या? यतिन ने अपने आपको एक निर्जन स्थान पर अकेला उदास एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ पाया। निराशा से डूबे हुए नकारात्मक विचारों में खोये हुए इस दुनिया से अनजान संभवतः कहीं दूर जहाँ कोई जानने वाला न हो, ऐसे स्थान पर जाने की गहन चिंता में डूबा हुआ था। तभी एक श्वेत वस्त्र में प्यारी सी बच्ची का मधुर स्वर सुनाई दिया।

‘क्या हुआ बाबा? इतने चुप क्यों हो?’ बोली वह बच्ची।

‘कुछ भी तो नहीं बेटा, बस ऐसे ही, ‘ यतिन ने उसे अनदेखा कर उत्तर दिया।

‘तुम्हें भी भूख लगी है ना बाबा? मुझे तो बहुत भूख लगी है। चलो ना, वहां सामने एक आश्रम दिखाई दे रहा है। अवश्य ही वहां कुछ खाने को मिल जाएगा,’ फिर से वही मधुर स्वर सुनाई दिया।

इस स्वर ने यतिन को मन्त्र मुग्ध कर दिया। बस चुम्बक की तरह खिंचता चला गया यतिन उस आश्रम की ओर, अपनी इस छोटी सी, सुन्दर सी मधुर धर्म पुत्री के साथ।

‘यह क्या? यह तो शिर्डी साईं बाबा का आश्रम है!’

‘बहुत प्रतीक्षा कराई, पुत्र। मैं तो कब से तुम्हारी प्रतीक्षा में ही यहाँ बैठा हूँ,’ शिर्डी साईं बाबा के प्रेम में डूबे हुए स्वर उसे आश्रम के मध्य आँगन से सुनाई दिए।

‘चरण स्पर्श गुरुदेव। मुझे और मेरी पुत्री को बहुत भूख लगी है, कुछ खाने को मिलेगा?’ मैंने शिर्डी साईं बाबा के चरणों में बैठकर पूछा।

‘अवश्य, यह फल अभी प्रसाद स्वरुप ग्रहण करो, बाद में पूर्ण भोजन करना,’ श्री शिर्डी साईं बाबा बोले।

यतिन और उसकी धर्म पुत्री प्रसाद ग्रहण करने लगे।

‘वत्स, उत्सुकता और व्याकुलता क्यों? मैं तुम्हें रत्न जड़ित स्वर्ण चादर देने आया हूँ, चीथड़ों के लिए इतना संघर्ष क्यों? अब दीक्षा ग्रहण करो’, शिर्डी साईं बाबा साधिकार स्वर में बोले। मैं मन्त्र मुग्ध हुआ उनके आदेशों का पालन करता रहा।

‘मेरे साथ इस मन्त्र का उच्चारण करो’, बोले शिर्डी साईं नाथ।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं।
भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

‘हे तीनों लोकों की स्वामिन, मैं आपके प्रकाशमान रूप का ध्यान करता हूँ। आपका ये रूप मेरी बुद्धि को सदैव सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे।‘

'पुत्र, सनातन समय से ही गुरु द्वारा अपने शिष्य को गायत्री मन्त्र से दीक्षित करने की प्रथा रही है। इसका उद्देश्य सर्वप्रथम अपने शिष्य को सांसारिक कष्टों से छुटकारा दिलाकर शान्ति की अनुभूति कराना है। इसके लिए बुद्धि का शुद्ध होना एवं प्रवर्तियों का सात्विक होना अत्यंत आवश्यक है। बुद्धि शुद्ध होने पर आत्म विकास की प्रेरणा जागती है तथा शिष्य लौकिक एवं परलौकिक असीम सुखों को भोगने का अधिकारी बनता है। गायत्री मन्त्र ऐसा ही सद्बुद्धि प्रदाता, प्रेरणादायक और मानव कल्याणकारी मन्त्र है। यह मन्त्र व्यक्तिगत और सामाजिक, सभी उच्च जीवन मूल्यों को ग्रहण करने की प्रेरणा देता है। संक्षेप में, यह मन्त्र मानव मात्र का सम्पूर्ण जीवन है। इसे सदैव स्मरण रखना', कहकर शिर्डी साईं बाबा ने भोजन के लिए आमंत्रित किया।

अब जैसे यतिन की तो भूख ही समाप्त हो चुकी थी। तुरंत उसने अपने गुरुदेव श्री शिर्डी साईं बाबा के चरण पकड़ लिए और उसका कवि हृदय गा उठा।

मोहे आज बचालो मेरे गुरु, जराय मुझे यह दावानलन।

ना सूझे कोई मार्ग प्रभु, भटकाय रही यह आवानलन ।।
मोहे आज बचा लो मेरे गुरु, जराय मुझे यह दावानलन...
संसार घना जंगल है गुरु, अंधकार छुपाए पाथागन ।
चहु ओर दिखें हैं वेग पशु, ना ठोर दिखे है बाचावन् ।।
मोहे आज बचा लो मेरे गुरु, जराय मुझे यह दावानलन...
दरश दीन्ह दिव्यदेव गुरु, अनुमोदन श्री विवेकानंदन ।
तुलसी नयन सफल हनू, जो दरश दिए रघुवर आनंदन ।।
मोहे आज बचा लो मेरे गुरु, जराय मुझे यह दावानलन...
ग्यान ध्यान ना समझ सकूँ, कोसों दूर हैं भक्तावन ।
पायूँ कैसे मैं सत्संग प्रभू, भक्ति ना मेरे समझावन ।।
मोहे आज बचा लो मेरे गुरु, जराय मुझे यह दावानलन...
मूढ़मती ना ध्यान लगा प्रभू, लक्ष्य एक बस स्वार्थापन ।
दूर करो अज्ञान मेरे गुरु, आया है सिडी तेरे द्वारापन ।।
मोहे आज बचा लो मेरे गुरु, जराय मुझे यह दावानलन...

इसके बाद यतिन की हड़बड़ाहट में आँख खुल गई। न तो वहां उसकी धर्म पुत्री थी, न ही शिर्डी साईं बाबा और न ही उनका आश्रम। लेकिन यतिन ने समझ लिया कि गुरुदेव ने उसे दीक्षित कर दिया। अब जब वह दीक्षित हो ही गया, तो जैसा शास्त्रों में वर्णित है उसका समस्त भार गुरुदेव के सर पर।

'धन्य हो गुरु। आपको सत सत प्रणाम। अब मेरे जीवन को अपने कर कमल में लीजिए और मुझे भविष्य के लिए निर्देश दीजिए,' यह सोचते हुए यतिन फिर सो गया।

आज यतिन को कार्य से सम्बंधित कुछ अनुसंधान के लिए ब्रिटिश पुस्तकालय जाना पड़ा। वांछित शोध पत्रिका से वह शोध पत्र पढ़ने के लिए एक पटल पर चला गया। थोड़ी ही देर में उसी पटल पर एक अफ्रीकी व्यक्ति भी कुछ अध्ययन करने के लिए आ गया। दोनों के नेत्र मिले। न जाने क्यों यतिन उस की ओर आकर्षित हो गया और उसे चाय पर आमंत्रित कर बैठा। उस अफ्रीकी व्यक्ति ने भी उसके निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। दोनों पुस्तकालय के जलपान गृह में बैठ वार्तालाप करने लगे। यतिन को तब पता लगा कि वह एक पश्चिमी अफ्रीकी देश घाना का एक नागरिक है

और यहां दिल्ली में घाना के उच्चायुक्त में एक पदाधिकारी है। यतिन की उससे मित्रता हो गई। बातों बातों में उसने यतिन के कार्य और नौकरी इत्यादि के बारे में भी पूछा। जब उसे पता लगा कि यतिन एक लघु एवं कुटीर उद्योग से सम्बंधित कंपनी में कार्य करता है, और उसकी इस विषय में विशेषज्ञता है तो उसने अपने विश्वविद्यालय, यूनिवर्सिटी ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी कुमासी, घाना, में आवेदन करने के लिए यतिन को प्रोत्साहित कर दिया। उसने बताया कि उसके इस विश्वविद्यालय में 'टेक्नोलॉजी कंसल्टेंसी सेंटर' एक विभाग है जो लघु एवं कुटीर उद्योग लगाने के लिए घाना के उद्यमियों की सहायता करता है। यतिन का अनुभव इस विभाग के किए अवश्य उपयुक्त रहेगा। उसने विश्वविद्यालय एवं इस विभाग के बारे में विस्तृत जानकारी दी और आवेदन करने की पद्धिति से अवगत कराया। यतिन तो कभी स्वप्न में भी विदेश में नौकरी करने की सोच ही नहीं सकता था, और वह भी विश्वविद्यालय में। उसके अनुसार तो विश्वविद्यालय में नौकरी के लिए न्यूनतम पी एच डी डिग्री की आवश्यकता होती है। लेकिन यतिन ने सोचा, ‘इसमें हानि ही क्या है? वह कुछ खो तो नहीं रहा?‘ बस उसने अपना आवेदन पत्र भेज दिया, इस विश्वविद्यालय में। थोड़ी ही दिनों बाद इस ‘टेक्नोलॉजी कंसल्टेंसी सेंटर’ के निदेशक से एक पत्र आया जिसमें लिखा था कि अभाग्य से उसके विभाग में तो कोई नौकरी की जगह उपलब्ध नहीं है, लेकिन उसने मेरे आवेदन को विश्वविद्यालय के रसायन तकनीकी विभाग में अग्रेषित कर दिया है। अगर उस विभाग में कोई पद उपलब्ध होगा तो वह उसे सीधे संपर्क करेंगे।

हफ्ते बीते, महीने बीते, परन्तु घाना के इस विश्वविद्यालय के रसायन तकनीकी विभाग से यतिन के पास कोई पत्र नहीं आया। यतिन अब निराश हो चुका था। सोचने लगा, कैसा पागल है वह? कहीं विश्व के किसी विश्वविद्यालय के शैक्षिक विभाग में बिना पी एच डी डिग्री कोई नियुक्ति मिल सकती है? यतिन को संभवतः विदेश जाने में कोई अति रूचि तो नहीं थी, परन्तु उसे इस भ्रष्टाचार के वातावरण से दिन प्रतिदिन घृणा होती जा रही थी। अपनी आनंदमयी माँ एवं शिरडी साईं गुरु पर उसे अटूट श्रद्धा और विश्वास था। मेरी माँ और मेरे गुरुदेव मुझे अवश्य एक दिन इस नर्क से निकालेंगे।

सन १९८१ की आज सीता जयंती थी। सीता माँ यतिन के परिवार की कुलदेवी हैं। वैसे तो कुलदेवी की आराधना प्रतिदिन ही होती है परन्तु सीता नवमी पर विशेष रूप से माँ का जन्म दिन मनाया जाता है। अभी यतिन पूजा कर कार्यालय के लिए निकलने

वाला ही था कि उसे डाकिया का स्वर सुनाई दिया, 'यतिन जी, आपका विदेश से कोई पंजीकृत पत्र आया है। कृपया हस्ताक्षर कर इसे लीजिये।'

हस्ताक्षर कर यतिन ने वह पत्र डाकिया से ले लिया। पत्र पर लगे डाक टिकट से उसने पहचाना, वह पत्र घाना से आया था। तुरन्त यतिन ने पत्र को खोला। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने घाना के यूनिवर्सिटी ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी कुमासी में प्रवक्ता के पद पर नियुक्ति पत्र देखा। 'हे माँ, हे गुरुदेव, सत सत प्रणाम। आखिर आपने मुझे इस भ्रष्टाचार भरे वातावरण से निकालने का प्रबंध कर ही दिया,' बोला यतिन।

यतिन ने उस नियुक्ति पत्र की स्वीकृति भेज दी। उस के पश्चात विश्वविद्यालय ने विमान की टिकट इत्यादि भेज दिया, और यतिन पहुँच गया घाना। कुछ हफ़्तों बाद यतिन की पत्नी और पुत्र भी उसके पास घाना पहुँच गए।

हरे कृष्ण समुदाय से परिचय

यतिन एवं उसके परिवार के घाना पहुंचने के कुछ समय पश्चात ही घाना देश में एक अप्रिय घटना घटित हो गई। वहां के एक भूतपूर्व सैनिक अधिकारी ने सेना के साथ मिलकर सरकार का तख्ता पलट दिया और स्वयं देश के मुख्य कार्यकारी अधिकारी (अध्यक्ष) पद पर आसीन हो गया। घाना में सैन्य तानाशाही हो गई। व्यापारीओं को विशेष रूप से प्रताड़ित किया जाने लगा। सैन्य अधिकारी उनकी दुकानों में जा लूट-पाट मचाने लगे। व्यापारी वर्ग डर से अपनी दुकानें बंद कर भूमिगत हो गए। इसका परिणाम यह हुआ कि खाने पीने की वस्तुएं भी बाज़ार से लुप्त हो गईं। ऐसा नहीं था कि खाद्य वस्तुएं देश में नहीं थीं, बस केवल काला बाज़ारी में जान पहचान के लोगों के लिए ही उपलब्ध थीं। यतिन और उसका परिवार घाना के स्थानीय खाद्य को अभी तक स्वीकार नहीं कर पाया था। यतिन को घाना में आए अधिक समय भी नहीं हुआ था, इसलिए वह किसी व्यापारी को जानता भी नहीं था जो उसकी मदद कर सके। ऐसे में उसके वरिष्ठ सहयोगी प्रोफ़ेसर डॉ केशव सिंह जी ने उसकी और उसके परिवार की मदद के लिए हाथ बढ़ाया। यतिन के लिए तो वह संभवतः माँ और गुरुदेव का आशीर्वाद ही था।

प्रोफ़ेसर केशव सिंह उस समय विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में प्रोफ़ेसर और उसके अध्यक्ष पद पर आसीन थे। उनके परिवार में उस समय उनके साथ उनकी पत्नी और तीन पुत्रियां थीं। बड़ी ही प्रिय पुत्रियां थी। वह अभी भी कुमासी, घाना, में ही निवास कर रहे हैं, और आजकल वहां एक विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर हैं। वह मूलतः बनारस के रहने वाले हैं। बड़े ही सरल, भगवद-भक्त और ज्ञानी पुरुष हैं। यतिन और उसके परिवार को तो जैसे एक बड़ा भाई और परिवार ही मिल गया। उन्होंने ही एक प्रकार से यतिन और उसके परिवार का पूरा उत्तरदायित्व ही अपने ऊपर ले लिया। बड़ा ही कठिन समय था। व्यापारी लोग खाद्य सामग्री केवल विदेशी मुद्रा से ही लेते देते थे। सैन्य कार्यवाही के कारण विदेशी मुद्रा का आदान प्रदान बंद था। ऐसे में व्यापारी लोग केवल काला बाज़ारी के माध्यम से ही विदेशी मुद्रा खरीदते और बेचते थे। सैन्य अधिकारीओं के डर से यह काला बाज़ारी का धंधा भी वह उन्हीं के साथ करते थे जिनसे लंबी जान पहचान हो। ऐसे में यतिन को तो कोई जानता ही नहीं था। प्रोफ़ेसर सिंह ने ही एक भारतीय सिंधी व्यापारी के माध्यम से यह सुनिश्चित किया कि यतिन को सब सुविधाएं उपलब्ध होती रहें। यतिन के पास तो उस समय कोई

वाहन इत्यादि भी नहीं था। प्रोफ़ेसर साहेब स्वयं अपनी कार में सभी खाद्य और दिन प्रतिदिन के प्रयोग में आने वाली अन्य सामग्री का प्रबंध कर यतिन के बंगले तक पहुंचाते थे। यतिन का पुत्र उस समय छोटा ही था। उसके दूध की आवश्यकता को भी कहीं दूर एक डेरी में जाकर हफ्ते में एक बार दूध लाकर भी देते थे। इतने दयालु स्वभाव के हैं, प्रोफ़ेसर साहेब। यतिन के मुख से सदैव उनके एवं उनके परिवार के लिए माँ आनंदमयी एवं गुरुदेव शिर्डी साईं बाबा से यही प्रार्थना रही कि वह उन्हें सफलता की हर सीढ़ी पर पहुंचा उन्हें स्वास्थय, सुख, शांति और प्रगति दें।

समय बीतता चला जा रहा था। कुछ महीनों में धीरे धीरे घाना में राजनैतिक स्थिति भी सामान्य होने लगीं। व्यापारीओं ने अपनी दुकानें खोल दीं और खाद्य एवं अन्य सामग्री उब्लब्ध होने लगीं। घाना की प्रशासनिक राजधानी आकरा है जो कुमासी से कोई २५० किलोमीटर की दूरी पर है। हर प्रशासनिक कार्य जैसे वेतन को स्वदेश भेजने के लिए विदेशी मुद्रा में परवर्तित करना, वीसा इत्यादि कार्यों के लिए आकरा ही जाना पड़ता था। अतः समय समय पर यतिन को भी आकरा का चक्कर लगाना ही पड़ता था। एक बार जब वह इसी प्रकार के किसी कार्यवश आकरा गया, तो वहां एक सरकारी कार्यालय में एक घाना वासी को गेरुए वस्त्र पहने 'हरे रामा हरे कृष्णा' महामंत्र का उच्चारण करते हुए सुना। यतिन के लिए तो इस अफ्रीकी देश में यह अत्यंत आश्चर्य की बात थी। वह तुरन्त उस व्यक्ति के पास पहुंचा और अपना परिचय दिया। वह व्यक्ति भी यतिन से मिलकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। परिचय के आदान प्रदान में उसने बतलाया कि वह हरे कृष्णा संघ (अंतर-राष्ट्रीय हरे कृष्णा समुदाय अर्थात इस्कॉन) का सदस्य है, और उसका नाम सीताराम दास है। समुदाय के घाना के अध्यक्ष स्वामी कृष्णा दास जी उसके गुरु हैं। स्वामी कृष्णा दास जी किसी समय बैंक ऑफ़ घाना के उपाध्यक्ष (डिप्टी गवर्नर) थे। हरे कृष्णा समुदाय से जुड़ने के बाद उन्होंने संन्यास ले लिया, और अपने घर को 'हरे कृष्णा मंदिर' में परवर्तित कर दिया। हम सब लोग वहीं रहते हैं और उनके निर्देशानुसार 'हरे कृष्णा' के महामन्त्र को उच्चारित करते रहते हैं। यतिन की बड़ी इच्छा हुई स्वामी कृष्णा दास जी से मिलने की। सीता राम दास जी ने यतिन को 'हरे कृष्णा मंदिर' का पता दिया और वहां कुछ दिन निवास करने का आमंत्रण भी दिया। यतिन ने यह कहकर विदाई ली कि अगली बार जब वह अपने परिवार के साथ आकरा आएगा तो स्वामी श्री कृष्णा दास जी से अवश्य मिलेगा।

कुछ ही महीने बीते होंगे कि यतिन को श्री सीता राम दास जी का सन्देश मिला। उसके गुरु स्वामी कृष्णा दास जी हरे कृष्णा समुदाय के कुछ भक्तों के साथ कुमासी पधार रहे हैं, और यतिन एवं उसके परिवार से मिलना चाहेंगे। 'उनका स्वागत है', यह सन्देश यतिन ने श्री सीता राम दास जी को भिजवा दिया। निर्धारित समय पर आकरा का 'हरे कृष्णा परिवार' यतिन के बंगले पर कुमासी पहुंचा। जलपान करने के बाद सभी ने बहुत मधुर धुन में हरे कृष्णा महामंत्र का जाप किया। यतिन स्वामी श्री कृष्णा दास जी की सौम्यता, सरलता और हिन्दू धर्म के ज्ञान से बड़ा प्रभावित हुआ। समय मिलने पर उसने स्वामी कृष्णा दास जी से पूछ ही लिया कि आपने हिन्दू धर्म कैसे और किन परिस्थितीओं में अपनाया।

स्वामी कृष्णा दास जी पुरानी स्मृतियों में खो गए और बोले, 'यतिन जी, कोई दस वर्ष पहले की घटना है। मैं तब बैंक ऑफ़ घाना के उपाध्यक्ष (डिप्टी गवर्नर) पद पर था। एक विशेष कार्य के लिए मुझे फ्रीटाउन, सीएरा लीओन, जाना पड़ा। जिस हवाई जहाज से मैं यात्रा कर रहा था, मेरी साथ की सीट पर एक गेरुए कपड़े धारी अफ्रीकन अमेरिकन स्वामी बैठा हुआ था, और माला फेरकर कुछ मुँह ही मुँह में बुदबुदा रहा था। मुझे बड़ी जिज्ञासा हुई जानने की कि यह कौन है, किस धर्म से सम्बंधित है, और मुँह ही मुँह में क्या बोल रहा है? पहली दृष्टि में मुझे लगा कि संभवतः वह बौद्ध धर्म का अनुयायी है। मैंने चित्रों में कई बार बौद्ध धर्म के अनुयायीओं को इस प्रकार के गेरुए वस्त्र धारण किए हुए देखा था। उसके सौम्य मुख से जिस प्रकार प्रसन्नता, शान्ति और संतोष की झलक दिखाई दे रही थी, लगता था कि इस दुनिया से अनजान वह अपनी किसी और दुनिया में खोया हुआ है। मैंने आजतक किसी मानव को इतना ओजमय नहीं देखा था। मेरी जिज्ञासा पर उस दिव्य पुरुष ने मेरी ओर मुस्कुराकर देखा और प्रिय एवं मधुर वाणी में अपना परिचय कराया।

'मित्र, मेरा नाम स्वामी भक्ति तीर्थ है। मैं इस्कॉन के संस्थापक स्वामी प्रभुपाद का शिष्य हूँ। अब तो वह समाधिग्रस्त हैं। उन्हीं की आज्ञा से मैं 'हरे कृष्णा समुदाय' के विस्तार हेतु अफ्रीका की यात्रा पर हूँ। घाना में था, अब सीएरा लिओन जा रहा हूँ। कुछ भारतीय मूल के लोगों ने मुझे वहां आमंत्रित किया है। अभी हमारा समुदाय वहां प्राथमिक अवस्था में ही है, लेकिन प्रभु कृष्णा और गुरुदेव प्रभुपाद के आशीर्वाद से जिस प्रकार की अनुक्रिया हमें मिल रही है, ऐसा लगता है कि शीघ्र ही वहां हम बड़ा केंद्र स्थापित करने में सफलता प्राप्त करेंगे।'

'प्रभु कृष्णा, स्वामी प्रभुपाद, यह कौन हैं स्वामी भक्ति तीर्थ जी? क्या आप मुझे भी कुछ बताएंगे?' मैंने भावविभोर हो यह प्रश्न स्वामी जी से पूछा।

इतनी देर में ही विमान चालक का एक दर्द भरा स्वर सुनाई दिया। 'बड़े खेद के साथ मैं आपको सूचित करता हूँ कि हवाई जहाज में कुछ तकनीकी समस्या हो गई है। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं सावधानी पूर्वक पास के मोनरोविआ हवाई अड्डे पर इसे आपातकालीन भूमिगत कराने में सफल हो सकूंगा। आप सावधानी से अपनी कुर्सी की पेटी बांधे रखिए और हमारे निर्देशों का अनुसरण करते रहिए। ईश्वर ने चाहा तो कोई क्षति नहीं होगी। आप आतंकित नहीं हों। समझदारी और सूझबूझ से अपना और अपने साथिओं का ध्यान रखें', चालक ने स्पष्ट स्वर में निर्देश दिया।

'इस सूचना से मैं कहूंगा कि जहाज में बैठे प्रत्येक व्यक्ति के चहरे पर हवाईयां उड़ने लगीं, तो यह अतिश्योक्ति नहीं होगी। ऐसा लगता था कि विमान चालक का यह सन्देश सुनते ही इस समय जहाज में बैठा हर व्यक्ति घबराहट में अपने ईश्वर को ही स्मरण कर रहा था। लेकिन मैंने जब स्वामी भक्ति तीर्थ की ओर देखा तो उनके चहरे पर वही प्रसन्नता और संतोषपन दिखाई दिया जो इस सूचना से पहले था। घबराहट का कोई नामो-निशान नहीं था। मेरे हृदय में बड़ी उत्सुकता हुई कि जब जहाज में बैठा प्रत्येक व्यक्ति, मेरे सहित, अपने प्राण रक्षा के लिए अपने अपने ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है और घबराहट में हर क्षण बिता रहा है, स्वामी जी इतने निश्चिंत कैसे हो सकते हैं? स्वामी जी नेत्र मूँद, अपनी माला फेरते हुए, मुँह में कुछ बुदबुदाते हुए, लगातार प्रेम और संतोष से कहने लगे, ‘कृष्णा तेरी माया अद्भुत। आज जहाज में तकनीकी खराबी का भी अनुभव कर लिया। अपने पुत्र, पुत्रीओं का ध्यान रखना।'

'परिस्थितीओं से जूझते हुए, परन्तु विमान चालक की सूझ बूझ और अनुभव से हवाई जहाज सुरक्षापूर्वक मोनरोविआ हवाई अड्डे पर उतरने में सफल हो गया। अब जब तक जहाज की तकनीकी समस्या का समाधान नहीं हो जाता तक तक हमें यहीं रुकना था। भाग्यवश हम लोग ऊंची श्रेणी में यात्रा कर रहे थे अतः हमें सम्मान के साथ ऊंची श्रेणी के लिए आरक्षित विश्रान्तिका में ले जाया गया। हमें सूचित किया गया कि विमान की तकनीकी समस्या का समाधान करने में छै से आठ घंटे का समय लग सकता है। यह आठ घंटे मेरे जीवन के संभवतः सबसे महत्वपूर्ण क्षण थे, जब

भाग्य से मुझे स्वामी भक्ति तीर्थ का सत्संग मिला जिसने मेरे जीवन का रुख ही परवर्तित कर दिया।'

स्वामी जी ने कहना प्रारम्भ किया, 'हे मित्र, संसार में लाखों प्रकार के जीवाणु हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार उनकी संख्या ८४ लाख है। क्या कभी तुमने इस पर विचार किया है कि केवल और केवल मनुष्य को ही भगवान् ने विकसित बुद्धि क्यों दी है? मनुष्य के जीवन का उद्देश्य क्या है? क्या केवल अपना और अपने परिवार का पेट भरने के लिए परिश्रम करते रहना, नियमित समय पर जागना, सोना, नित्य क्रिया करना, मैथुन करना, क्या इसी के लिए हमने जन्म लिया है? हम कितना भी प्रयास करें, हमें सुख और दुःख दोनों का ही सामना क्यों करना पड़ता है? हम तो दुःख से रहित शान्ति पूर्ण जीवन, निरोगी काया, और संभवतः अमरत्व चाहते हैं, लेकिन वह हमें क्यों नहीं मिलता? कोई तो अदृश्य शक्ति है जो हमें नियंत्रित करती है! अगर उस शक्ति के पास हमें नियंत्रण करने की शक्ति है, तो हमें दुःख रहित शान्ति पूर्ण जीवन देने की भी शक्ति होगी! इन प्रश्नों को लिए मैं भटकता रहा था। अपनी युवा अवस्था में मैं ईसाई धर्म का प्रचारक भी था। इन्हीं प्रश्नों को लेकर एक के बाद एक ईसाई धर्म के प्रवक्ता से मिलता रहा। कहीं संतुष्टि नहीं हुई। फिर इस्लाम धर्म के ज्ञाता के पास भी गया। उनसे भी ज्ञान लिया। इस्लाम धर्म अपनाया भी। लेकिन इन प्रश्नों का उत्तर और हृदय को शांति वहां भी नहीं मिली। तभी भाग्य से मैं एक भारतीय सन्यासी स्वामी प्रभुपाद से न्यूयॉर्क में मिला। अभयचरणारविंद भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद उस समय अमेरिका में गौड़ीय वैष्णव गुरु तथा हिन्दू धर्म के प्रचार के लिए आये हुए थे। उनकी मधुर वाणी और ईश्वर प्रेम ने मुझे आकर्षित किया। एक दिवस मैं उनके चरणों में बैठ, अपने इन्हीं प्रश्नों को पूछने लगा। स्वामी जी हँसे और बोले, 'पुत्र, सुख दुःख कुछ नहीं, अपने ही कर्मों का परिणाम है।'

'कर्म? यह क्या है स्वामी जी, और इसके परिणाम हमें सुख दुःख कैसे दे सकते हैं? मैंने तो जाना है कि मृत्यु के बाद प्रलय काल में ईश्वर कर्मों का फल दे उन्हें स्वर्ग और नर्क भेज देते हैं। फिर इस संसार में यह कर्मों का परिणाम क्यों?,' मैंने विनम्रता से स्वामी जी से पूछा।

स्वामी जी ने विस्तार पूर्वक समझाया, 'पुत्र, यही संसार स्वर्ग और नर्क है। हमारे कर्मों का परिणाम हमें इसी संसार में मिलता है। कभी कभी हमारे कृत्यों का फल देने के

लिए एक जीवन पूर्ण नहीं होता, तब हमें दोबारा जन्म लेना पड़ता है। यही 'ऋण-अनुबंध' के नाम से जाना जाता है। उदाहरण स्वरुप समझो, मैंने तुम्हारा कोई अत्यंत अहित किया है जिसके कारण तुम मुझ से शत्रुता करते हो और हृदय में मेरे विनाश की कल्पना करते रहते हो। तुम्हारे पूर्ण प्रयास के पश्चात भी तुम इस जन्म में मुझ से बदला नहीं ले पाते। लेकिन इसी भावना को लेते हुए तुम्हें मृत्यु आ जाती है। मनुष्य की अंतिम इच्छा का भगवान् भी बहुत सम्मान करते हैं। फिर मुझे मेरी दुष्टता का दंड भी तो भगवान् को देना है। अतः मेरा और तुम्हारा दोनों का पुनर्जन्म होगा और तुम मुझ से बदला लोगे। यही जीवन चक्र चलता रहता है। इन्हीं भावनाओं से ओत प्रोत हो पुरुष अपने जीवन की शान्ति खो देता है और दुःख ही दुःख प्राप्त करता है। अब जीवन में सदैव सब का अहित ही तो नहीं किया होगा, कुछ हित एवं परोपकार भी किया होगा। सुख के रूप में इन हितों और परोपकारों का परिणाम प्रभु देते हैं, और बुरे कर्मों का फल दुःख और अशांति देकर ईश्वर देते हैं।'

'स्वामी जी, कोई तो मार्ग होगा कि पुरुष इन सभी सुख-दुःख के चक्र से निकल सके और शांति को प्राप्त कर सके', मैंने बड़ी विनम्रता से स्वामी प्रभुपाद जी से पूछा।'

'अवश्य, पुत्र। जो परिणाम देने वाला न्यायाधीश है, अगर उसके समक्ष हम अपनी त्रुटियों को मान उसकी शरण में आ जाएं और वचन दें कि अब हम कोई बुरा कार्य नहीं करेंगे, तो यह तो मैं नहीं कहूंगा कि वह तुम्हारे दुःख दूर कर देगा, क्योंकि दुःख तो तुम्हारे कर्मों के फल स्वरुप है और वह तुम्हें स्वीकार करने ही पड़ेंगे, स्मरण रखो कि ईश्वर निष्पक्ष न्यायधीश है, परन्तु हाँ, या तो वह तुम्हारे दुःख कम कर देगा अथवा तुम्हें असहनीय कष्ट सहने की क्षमता दे देगा। मैं इस बारे में तुम्हें एक सत्य कथा सुनाता हूँ जो तुम्हारे इस प्रश्न के उत्तर को समझने में सहायक होगी,' बोले स्वामी प्रभुपाद।

'यह भारत में मुग़लों और अंग्रेज़ों के शासन से पूर्व उस समय की सत्य कथा है जब हिन्दू सम्राटों का साम्राज्य हुआ करता था। ऐसे ही एक हिन्दू सम्राट के राज्य में एक कुख्याति प्राप्त डाकू हुआ। बड़ा ही निर्दयी था। सम्राट की प्रजा के असहाय और निर्बल लोगों को कष्ट देने के साथ साथ न जाने उसने कितनी हत्याएं कीं। सम्राट के सैनिक दिन रात उसे पकड़ने का प्रयास करते रहते। आखिर एक दिन वह पकड़ा गया और सम्राट के समक्ष उपस्थित किया गया। सम्राट ने उसके कुकृत्यों का दंड मृत्यु दंड के

रूप में दिया। उस समय के सम्राट धर्म से प्रभावित प्रजा के हित में राज करते थे। वह ज्ञानी थे और जानते समझते थे कि इस प्रकार की दुष्प्रवित्ति मनुष्य के पूर्व जन्मों के कुकृत्यों के कारण होती है। अतः इस दुष्प्रवित्ति को छोड़ मनुष्य अगले जन्म में अच्छे संस्कार ले पैदा हो, इस उदेश्य से उसे मृत्यु दंड ऐसे क्षण दिया जाता था जब आकाश में सितारों का शुभ मिलन हो। राज-ज्योतिषी के परामर्श पर मृत्यु दंड देने का समय निकाला जाता था। यह समय कभी कभी १० वर्ष या उससे अधिक के बाद का भी हो सकता था। जब तक निर्धारित समय न आ जाय तब तक बंदी कारागार में अत्यंत परिश्रम करते हुए कष्टमय जीवन बिताता रहता था। जब राज-ज्योतिषी ने इस डाकू की मृत्यु का समय बाँचा, तो वह १२ वर्ष बाद का निकला। बंदी को मृत्यु दंड के समय की प्रतीक्षा तक कारागार वास के लिए भेज दिया गया।'

'कारागार के मुख्य अधिकारी कोतवाल जी भगवान् के भक्त एवं अत्यंत दयालु प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्होंने कारागार के मुख्य द्वार पर एक छोटा सा मंदिर बना रखा था। प्रातः कारागार में प्रवेश करने से पहले वह प्रभु की स्तुति करते, उनसे सद्बुद्धि माँगते, तब अपना कार्य प्रारम्भ करते। यह डाकू बंदी उनके इस शुभ कृत्य पर हँसता रहता। उन्हें उलाहना देता रहता। 'अरे अधिकारी जी, यह पत्थर की मूर्ती आपको ज़ागीरदार बनाने वाली नहीं है। अगर जीवन में कुछ करना है तो पुरुषार्थ से काम लो। जानता हूँ तुम अपनी युवा अवस्था में सम्राट के विश्वसनीय बहादुर सैनिक और सेना-नायक रहे हो, और देखो, सम्राट ने तुम्हें ज़ागीर देने के स्थान पर कोतवाल बना दिया। जाओ, सम्राट से अपना अधिकार मांगो चाहे इसके लिए तुम्हें संघर्ष ही क्यों न करना पड़े।'

कारागार मुख्य अधिकारी उसकी यह व्यंग्य भरी वाणी सुनते रहते, उसकी ओर मुस्कुरा कर देखते और अपना कार्य प्रारम्भ करते। समय बीतता चला गया। कोई दो वर्ष बीते होंगे कि इस डाकू बंदी का कुछ कुछ हृदय परिवर्तन होने लगा। वह सोचने पर विवश हो गया कि कारागार मुख्य अधिकारी एक सुशिक्षित सेना-नायक रहे हैं। उसने सुना है कि उनके प्रवचन सुनने दूर दूर के स्थानों से लोग आते हैं। कोई तो कारण होगा जो यह अधिकारी इस पत्थर की मूर्ती की पूजा करते हैं। एक दिन इसी विचार से वह अधिकारी जी के पास पहुंचा। अब था तो डाकू ही, व्यंग्य वचन तो जा नहीं सकते। व्यंग्य में ही बोला, 'अधिकारी जी, अगर मैं इस पत्थर की आपकी भांति पूजा करूँ तो क्या यह मूर्ती मेरा मृत्यु दंड टाल मुझे जीवन दान दिला सकती है?'

अधिकारी जी बोले, 'पुत्र, मैं तेरी इस बात का उत्तर तो नहीं दे सकता कि तेरा मृत्यु दंड टल सकता है अथवा नहीं, लेकिन एक बात अवश्य कहूंगा। तू दिन भर करता ही क्या है? अपने साथी बंदियों को डराता रहता है। जानता हूँ तू अपना परिश्रम भरा कार्य भी उनसे कराने को उन्हें प्रताड़ित करता रहता है। तेरे डर के कारण वह उचित अधिकारीओं से शिकायत भी नहीं करते। मैं भी उचित शिकायत न मिलने के कारण तेरे विरुद्ध कोई प्रतिक्रया नहीं ले सकता। अभाग्य से नियम से बंधा हूँ। क्यों न कुछ समय तू भी इस मूर्ती की स्तुति कर लिया कर। अरे अगर यह जन्म नहीं तो संभवतः अगला जन्म ही बदल जाए।'

न जाने क्यों, उस कारागार अधिकारी महात्मा के सत्संग का प्रभाव कहिए या प्रभु इच्छा, उसके हृदय पर अधिकारी जी के शब्दों का गहरा प्रभाव पड़ा।'

'वह भी प्रतिदिन प्रातः उठने और नित्य क्रम करने के पश्चात मंदिर जाकर मूर्ती के हाथ जोड़ने लगा। कुछ दिनों पश्चात वह मुख्य अधिकारी जी के साथ आरती इत्यादि में भी सम्मिलित होने लगा। प्रभु की इच्छा, उसका शनैः शनैः हृदय परिवर्तन होने लगा। अब वह एक अच्छा पुरुष बनने का प्रयास करने लगा। जो असहाय या रोगी बंदी होते, उनकी सहायता करने लगा। जो कार्य उसको अधिकारीओं द्वारा दिया जाता था, वह तो करता ही था साथ में अन्य निर्बल बंदीओं का भी कार्य करने लगा। इसी प्रकार लगभग ८ वर्ष बीत गए। इस पूर्व डाकू को देखकर अब कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि यह कभी इतना क्रूर डाकू रहा होगा।'

'इसी समय सम्राट को पुत्र प्राप्ति हुई। सम्राट प्रौढ़ावस्था में पहुँच चुके थे। बड़े चिंतित रहते थे कि उनके बाद इस साम्राज्य का क्या होगा? प्रभु से अपने उत्तराधिकारी प्राप्त करने की दिन रात स्तुति करते रहते थे। इस अवस्था में पुत्र प्राप्ति ने उन्हें अत्यंत प्रसन्न कर दिया। राज्य में प्रतिदिन उत्सव मनाए जाने लगे। यह भी उस समय की प्रथा थी कि अत्यंत प्रसन्नता के अवसर पर अच्छा व्यवहार करने वाले बंदीओं को रिहा कर दिया जाता था। अतः सम्राट ने मुख्य कारागार अधिकारी से ऐसे अच्छे व्यवहार वाले बंदीओं की सूची माँगी जिन्हें रिहा करना वह उचित समझते थे। मुख्य कारागार अधिकारी सम्राट के अत्यंत विश्ववासपात्र थे। उनके किसी भी कथन पर सम्राट कभी प्रश्न चिन्ह नहीं लगाते थे। जब उनसे सूची माँगी गई तो उन्होंने अन्य बंदीओं के साथ जिनको रिहा करना वह उचित समझते थे इस डाकू का नाम भी भेज दिया। तुरंत

सभी की रिहाई का सम्राट के कार्यालय से आदेश आ गया। इस डाकू बंदी की प्रसन्नता का तो अंत ही नहीं। समझ गया प्रभु की शक्ति को। आज उसे कारागार मुख्य अधिकारी की भगवान् के प्रति श्रद्धा पर पूर्ण विश्वास हो गया था। बड़ी प्रसन्नता से कारागार से निकल अपने गांव की ओर चल दिया। रास्ते में विचार कर रहा था कि गांव पहुंचते ही वह अपनी ज़मीन पर एक सुन्दर भगवान् का मंदिर बनवाएगा, और अपना शेष जीवन प्रभु को अर्पित कर निर्धनों और निर्बलों की सेवा में बिताएगा।'

'गौ धूलि का समय था। गन्ने के खेतों के बीच तंग पंगडंडी से अपने गांव शीघ्र पहुंचने के लिए पूर्व डाकू उतावलेपन में शीघ्रता से कदम बढ़ा रहा था। अचानक उसका दायां पैर किसी तीव्र धार वाली लोहे की वस्तु पर पड़ गया। रुक कर देखा, यह तो हल का फल है। लोहे का फल उसके पैर में अंदर तक धंस कर गहरी चोट कर चुका था। लोहू-लुहान हुआ दर्द से बुरी तरह कराहने लगा। आसपास कोई था भी नहीं जिसे सहायता के लिए पुकारता। अभी कारागार से कोई एक मील के लगभग ही आया होगा। संभवतः सहायता प्राप्त करने के लिए वही सबसे समीप जगह थी। उठ कर किसी तरह कारागार की ओर चलने का प्रयास करने लगा। अब डाकू रहा था, साहसी तो था ही, किसी प्रकार एक पैर से लंगड़ाते हुए दर्द में कराहते हुए वह कारागार के द्वार तक पहुँच गया और मुख्य अधिकारी को करुणामय स्वर में पुकारने लगा। मुख्य अधिकारी प्रायः तो गौ धूलि से पहले ही अपने गृह चले जाते थे क्योंकि उनके संध्या वंदन का समय हो जाता था, परन्तु उस दिन सम्राट के आदेश से कई बंदियों को रिहा करना था, अतः उचित कार्यवाही करने में समय लग गया था और संयोग से वह अभी भी अपने कार्यालय में ही थे। इस पूर्व डाकू का करुणामय स्वर सुन उन्हें प्रथम तो अचम्भा हुआ कि उसकी तो रिहाई हो गई है, अब वह यहां क्या कर रहा है? लेकिन उसके स्वर में कराहता सुन उनका माथा ठनका। तुरंत कार्यालय से निकल द्वार पर आए। उसकी यह दयनीय अवस्था देख तुरंत उसे अपने साथ घोड़े पर बिठाया और वैद्यशाला ले गए। वैद्य जी ने तुरंत उपचार किया। दुर्भाग्य से उसका पैर लोहे की जंग से विषाक्त हो चुका था, अतः उसे जीवित रखने के लिए शल्य चिकित्सा द्वारा उसका पैर काटना पड़ा।'

'दायां पैर कटने के बाद पूर्व डाकू को वैद्यशाला में ही कुछ समय स्वास्थ्य लाभ के लिए रुकना पड़ा। कारागार मुख्य अधिकारी लगभग प्रतिदिन उससे मिलने और उसके स्वास्थ्य की जानकारी के लिए आते थे। एक दिन जब वह वैद्यशाला आए तो

उनके कंधे पर अपना सर रखकर सुबक सुबक कर रोने लगा यह पूर्व डाकू। 'महाराज जी (वह कारागार मुख्य अधिकारी को महाराज जी कह कर ही सम्बोधित करने लगा था), प्रभु ने मेरी प्रार्थना सुनी। मुझे मृत्यु दंड से मुक्ति दिला दी। अब तो मैं पूर्णतः बदल गया था। गांव में जाकर उनका मंदिर बना अपना समस्त जीवन उनके चरणों में व्यतीत करने का संकल्प कर चुका था। फिर यह कष्ट? प्रभु ने मुझे लंगड़ा क्यों कर दिया? जानता हूँ आप तो प्रभु के अत्यंत समीप हैं, अत्यंत ज्ञानी पुरुष हैं, मुझे इसका कारण बताइए।'

'कारागार मुख्य अधिकारी ने प्रेम से उसके सर पर अपना हाथ रखा और उसके सर के बालों को अपनी उँगलियों द्वारा प्रेम से सहलाने लगे। उसे खूब रोने दिया। जब वह शांत हो गया तो प्रेम भरी मधुर वाणी में बोले, 'पुत्र, तू बहुत भाग्यशाली है। प्रभु ने तुझे यह कष्ट देकर तेरा तो जीवन ही पवित्र एवं कोरे कागद की तरह निष्कपट कर दिया। जब तुझे रिहाई मिली तो मेरे स्वयं के हृदय में भी एक प्रश्नचिन्ह था। प्रभु तो निष्पक्ष हैं। अब तूने अपराध तो किये ही हैं और जघन्य अपराध किये हैं। इन अपराधों का दंड मिले बिना प्रभु तुझे मुक्ति कैसे दे सकते हैं? आज मुझे स्वयं भी उसका उत्तर मिल गया। तेरी साधना से प्रसन्न प्रभु ने तुझे मृत्यु दंड से मुक्ति तो अवश्य दिलाई, लेकिन जो फरसा तेरे गले पर चल तेरी गर्दन को धड़ से अलग करने वाला था, वह फरसा तेरे पैर पर चल केवल तेरे पैर को ही तेरे शरीर से दूर कर पाया। अब तुझे दंड भी मिल गया। प्रभु ने अपना न्याय भी दिखा दिया। जा, अब निश्चिंत हो प्रभु की स्तुति कर और अपना जीवन संवार।'

'प्रभु की यह माया सुन पूर्व डाकू चकित हो गया। आंसुओं के स्थान पर उसके चहरे पर मुस्कराहट आ गई। 'हे प्रभु, तेरी लीला अपरम्पार। मेरे नमन स्वीकार करो,' सहसा उसके मुख से शब्द निकले।

सुनते हैं कि उस पूर्व डाकू ने इस घटना के बाद स्वास्थ्य लाभ के पश्चात वैद्यशाला से निकल संन्यास ले लिया और हिमालय में तपस्या के लिए चला गया।'

स्वामी भक्ति तीर्थ जी कहने लगे, 'इस कथा को सुनाने के पश्चात स्वामी प्रभुपाद एकदम शांत हो गए। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। फिर अपने को सम्हाल कर मुझ से बोले, 'तुम्हें इस कथा का सारांश समझ में आ ही गया होगा। केवल और

केवल एक ही साधन हैं इन दुःखों से मुक्ति पाने का, और वह है प्रभु की शरण में जाने का मार्ग। मैं यही सन्देश लोगों तक पहुंचाने का प्रयास कर रहा हूँ। तुम्हें इस सांसारिक सुख-दुःख, माया-चक्र से मुक्ति के लिए कुछ अधिक करने की आवश्यकता नहीं है, बस प्रभु को उनके महामंत्र द्वारा प्रेम से पुकारो।'

'वह महामंत्र क्या है गुरुवर,' मैंने तब स्वामी जी से पूछा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ॥

'कृष्ण (सर्व मनभावन भगवान) एवं राम (सर्वोच्च भोक्ता) भगवान के नाम हैं और हरे भगवान की ऊर्जा है। अतः महामंत्र के जपन से हम हरि की आंतरिक ऊर्जा को संबोधित कर उनके शरणागति होते हैं। जब प्रभु को इस प्रकार से संबोधित किया जाता है तो प्रभु पूछते हैं, 'हे वत्स,'तुम क्या चाहते हो?' तब जपकर्ता प्रभु को सम्बोधित करता है,' हे प्रभु, मुझे अपनी सेवा में ले लीजिए।'

स्वामी भक्ति तीर्थ जी आगे बोले, 'स्वामी प्रभुपाद से मिलन ने मेरा जीवन ही परवर्तित कर दिया। मुझे मेरे सभी प्रश्नों का उत्तर मिल चुका था। मैंने वहीं स्वामी प्रभुपाद जी को प्रणाम किया और अपना गुरु स्वीकार किया। अब स्वामी प्रभुपाद तो इस संसार में नहीं रहे, पर मैं स्वयं और मेरा हरे कृष्ण परिवार (इस्कॉन) उनका यही सन्देश जगत में फैलाने का प्रयास कर रहा है।'

स्वामी कृष्णा दास जी बोले, 'यतिन जी, स्वामी भक्ति तीर्थ के इन अनुभवों को सुनने के पश्चात जैसे मेरे भी नेत्र खुल गए। मुझे इस संसार से विरक्ति हो गई। फ्रीटाउन से लौटने के पश्चात मैंने बैंक ऑफ़ घाना से कुछ दिनों की छुट्टी ली और चला गया स्वामी भक्ति तीर्थ के पास न्यूयॉर्क। वहां से लौटा तो जैसे मैंने एक नए जीवन में प्रवेश कर लिया था। मैंने अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और घाना में हरे कृष्णा समुदाय की स्थापना में जुट गया।'

'स्वामी कृष्णा दास जी, मुझे आपसे मिलकर अत्यंत प्रसनता हुई। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो अवश्य बताइएगा,' बोला यतिन।

'हमारा समुदाय घाना में अभी नया ही है। आप सब हिन्दू भारतीयों का इसके उत्थान के लिए मैं सहयोग की अपेक्षा करता हूँ। आप जब भी आकरा आएं, हमारे अतिथि अवश्य बनिए। अगर संभव हो तो हमारे जीवन पर्यन्त सदस्य बन जाइए। इसका थोड़ा शुल्क अवश्य है, परन्तु वह हमारे प्रति आपका प्रेम दर्शाएगा। साथ में हम आपको 'हरे कृष्णा समुदाय पासपोर्ट' भेंट करेंगे, जिससे आप संसार में हमारे किसी भी केंद्र में निःशुल्क आतिथ्य स्वीकार कर सकते हैं,' बोले स्वामी कृष्णदास जी।

'अवश्य, मैं और मेरा परिवार हरे कृष्णा समुदाय के जीवन पर्यन्त सदस्य बनाने के इस अभियान का हृदय से स्वागत करता है, और हम सब समुदाय के सदस्य भी बनते हैं,' यह कहकर यतिन ने निर्धारित राशि स्वामी जी को दे दी।

इस प्रकार यतिन का हरे कृष्णा समुदाय से परिचय हुआ, और वह परिवार सहित जीवन पर्यन्त सदस्य भी बन गया। यतिन जब अगली बार परिवार सहित आकरा गया, तो हरे कृष्णा समुदाय का आतिथ्य भी स्वीकार किया।

समय बीतता चल गया। यतिन को घाना के इस विश्वविद्यालय में प्रवक्ता के पद पर चार वर्ष बीत चुके थे। संभवतः अब समय था कि पदोन्नति पर कुछ विचार किया जाए। यतिन जानता था कि वह भाग्यशाली था कि उसे बिना पी एच डी डिग्री के प्रवक्ता का पद मिल गया था, परन्तु आगे किसी पदोन्नति के लिए उसे पी एच डी डिग्री प्राप्त करना अति आवश्यक था। यतिन ने एक बार इस उच्च डिग्री प्राप्ति के लिए इसी विश्वविद्यालय से भी प्रयास किया, पर असफल रहा। यतिन के पास और कोई मार्ग नहीं था, अतिरिक्त इसके कि किसी उन्नत देश के किसी विश्वविद्यालय में छात्रवृत्ति लेकर पी एच डी डिग्री प्राप्त की जाए। यतिन प्रयास करता रहा, और उसे एक दिन यूनिवर्सिटी ऑफ़ टेक्नोलॉजी ग्राज़, ऑस्ट्रिया, के रसायन तकनीकी विभाग से अनुसंधान और पी एच डी डिग्री करने का प्रस्ताव आया जो उसने स्वीकार कर लिया। अपने विश्वविद्यालय से अध्ययन अवकास लेकर वह परिवार सहित ऑस्ट्रिया चला गया।

प्रारम्भ में ऑस्ट्रिया में वह और उसका परिवार अकेला सा पड़ गया था। एक तो भाषा की परेशानी, ऑस्ट्रिया में जर्मन भाषा बोली जाती थी जिससे यतिन और उसका परिवार पूर्णतः अनभिज्ञ था, और फिर सांस्कृतिक विभेद। लेकिन यतिन और उसके

परिवार ने साहस नहीं छोड़ा। कुछ मित्र भी बन गए थे जिन्हें अंग्रेज़ी आती थी और बड़े ही सहयोगी थे। इसके अतिरिक्त यतिन के अनुसंधान के पर्यवेक्षक प्रोफेसर अमेरिका में कई सदी रहे थे। उन्हें अंग्रेज़ी में वार्तालाप करने में कोई आपत्ति नहीं थी, अतः समय अच्छा ही बीतता गया। उसका हरे कृष्णा समुदाय का सम्बन्ध भी यहां बहुत काम आया। ग्राज़ के पास पहाड़ी पर एक हरे कृष्णा का अति सुंदर मंदिर था। इस मंदिर के अध्यक्ष से यतिन की अच्छी मित्रता हो गई थी। कभी कभी यतिन अपने परिवार के साथ वहां इस मंदिर में जाता रहता था। मंदिर के अध्यक्ष भी जभी भी ग्राज़ आते तो यतिन और उसके परिवार से अवश्य मिलते थे। इस मंदिर के अध्यक्ष के बारे में एक अति रोचक घटना उल्लेखनीय है। इस हरे कृष्णा मंदिर ग्राज़ के अध्यक्ष ऑस्ट्रिया के एक बड़े व्यापारी के पुत्र थे। विरासत में बेसुमार धन मिला था। अपने स्वयं के धन से ही उन्होंने इस सुन्दर मंदिर का अपने फ़ार्म हाउस में ही निर्माण किया था। उनके पास एक बहुमूल्य फ़रारी कार थी जो उन्हें अति प्रिय थी। वह इसी कार से सफर करते थे। एक दिन जब वह यतिन से उसके ग्राज़ गृह में मिलने आए तो टैक्सी से आए। यतिन को बड़ा अचम्भा हुआ, पूछा, 'आपकी अति सुन्दर फ़रारी कार कहाँ है?’, बड़े अनमने मन से उन्होंने उत्तर दिया, 'कल मैं जर्मनी से वापस लौट रहा था। ऑटोबान पर मेरी कार की गति कोई २५० किलो मीटर प्रति घंटे से अधिक ही रही होगी तब अचानक एक दुर्घटना हो गई जिससे मेरी कार तो पूर्णतः क्षतिग्रस्त हो गई, लेकिन कृष्णा ने मुझे एक खरोंच भी नहीं लगने दी। मुझे लगता है कि मैं उस कार को कुछ अधिक ही प्रेम करने लगा था, संभवतः कृष्णा से भी अधिक, इसलिए कृष्णा ने मुझसे वह छीन ली। अब मैंने कृष्णा को वचन दिया है कि मैं ऐसी कोई वस्तु नहीं खरीदूंगा जिसे मुझे कृष्णा से अधिक प्रेम हो।' उनकी बातों से यतिन का हृदय प्रफुल्लित हो गया। काश, हम सब भी भगवान् से ऐसा ही प्रेम कर सकें।

यतिन अपने अनुसंधान में अत्यंत मेहनत से सफलता पूर्वक आगे बढ़ता रहा। वह प्रतिदिन १६ से १८ घंटे तक कार्य करता था। प्रभु की असीम कृपा से उसके अनुसंधान पर्यवेक्षक प्रोफेसर उससे बड़े ही संतुष्ट थे। जो पी एच डी डिग्री मिलने में साधारणतः ४ से ५ वर्ष का समय लगता है, लगभग ढाई वर्ष बाद ही उन्होंने यतिन को थीसिस लिखने का आदेश दे दिया। यतिन ने विशिष्टता के साथ पी एच डी की डिग्री प्राप्त की। इतना ही नहीं, उन्होंने यतिन को अपने एक मित्र की कंपनी में ऑस्ट्रेलिया में एक मुख्य प्रबंधक की नौकरी भी दिला दी। इस प्रकार यतिन अपने परिवार के साथ ऑस्ट्रेलिया के पर्थ शहर में विस्थापित हो गया।

परमहंस ठाकुर श्री राम कृष्ण जी का आशीर्वाद

यतिन और उसके परिवार की ऑस्ट्रेलिया के पर्थ शहर में आने के बाद भी धार्मिक रूचि उसी प्रकार रही। उस समय पर्थ में श्री शिव मंदिर का निर्माण हो रहा था। यतिन और उसका परिवार इस मंदिर में प्रायः हर सप्ताहांत जाता ही रहता था। तत्कालीन मंदिर अध्यक्ष ने यतिन को मंदिर की तत्कालीन प्रबंध समिति का सदस्य बना दिया। यहां उसकी मित्रता पर्थ के कई हिन्दू वरिष्ठ सदस्यों से हो गई। मंदिर में प्रायः देश विदेश से अतिथि आए हुए संत और सन्यासीओं के प्रवचन होते रहते थे। उनमें एक नियमित अतिथि थे, श्री राम कृष्ण मिशन के स्वामी श्री दामोदरानन्द जी महाराज। वैसे तो वह श्री राम कृष्ण मिशन फ़िजी के अध्यक्ष थे और वहीं उनका स्थायी निवास भी था, परन्तु ऑस्ट्रेलिया वर्ष में दो से तीन बार अवश्य आते रहते थे।

अपने आने का पूर्व सन्देश वह मंदिर प्रबंधन समिति को अपने भक्त द्वारा भिजवा दिया करते थे। उनका सन्देश मिलने पर मंदिर प्रबंधन समिति उनके स्वागत के लिए एक समिति का गठन करती थी एवं उनके प्रवचन का समय और दिनांक नियुक्त कर समस्त पर्थ के हिन्दू समाज को उनसे आशीर्वाद लेने के लिए आमंत्रित करती थी। इस बार इस स्वागत समिति में यतिन को भी स्थान दिया गया।

स्वामी दामोदरानन्द जी के पर्थ आने से कुछ दिन पूर्व यतिन के जीवन में एक अत्यंत रोचक एवं महत्वपूर्ण घटना घटी। संध्या पूजन के बाद जब यतिन अपने बिस्तर पर एक रात्रि को सोने का प्रयास कर रहा था तो गुरुदेव श्री शिर्डी साईं नाथ का दर्शन हुआ। बड़े ही प्रसन्न लग रहे थे बाबा, बोले, 'यतिन, जानते हो संत अनंत का ही रूप होते हैं। प्रत्येक संत में मेरी ही छवि देखोगे तो संत दर्शन का उसी प्रकार लाभ होगा जैसे नारद मुनि के दर्शन से एक चींटी को लाभ हुआ था और अंततः उसे मोक्ष की प्राप्ति हुई थी। तुम्हारे शहर में भी शीघ्र एक ईश्वर के प्रिय भक्त, परमहंस ठाकुर श्री रामकृष्ण जी गुरु परम्परा की संस्थान के संत आ रहे हैं, उनके दर्शन कर अपना जीवन सफल करो।'

यतिन की उत्सुकता बढ़ गई। यह तो उसे पता था कि श्री रामकृष्ण मिशन के एक संत स्वामी श्री दामोदरानन्द जी महाराज फ़िजी से पर्थ कुछ दिनों के लिए अतिथि बनकर आ रहे हैं क्योंकि वह भी उनकी स्वागत समिति का सदस्य था, परन्तु संत

दर्शन से एक चींटी को मोक्ष प्राप्ति, यह कथा वह गुरुदेव के मुख से सुनने के लिए बेचैन हो गया। चरण पकड़ लिए गुरुदेव के और विनती करने लगा, 'हे प्रभु, मुझे यह मोक्षप्रदायिनी कथा सुनाओ।'

गुरुदेव बोले, 'एक बार ब्रह्मऋषि नारद भगवान विष्णु के पास गए और प्रणाम करते हुए बोले, 'हे भगवन, मुझे संत दर्शन की महिमा से अवगत कराओ।' विष्णु भगवान मुस्कुराते हुए बोले, 'हे ब्रह्मऋषि नारद, तुम पृथ्वी लोक पर अमुक स्थान पर एक अमुक वृक्ष के पास जाओ। वहां तुम्हें एक चींटी रेंगती हुई मिलेगी। वही तुम्हें संत दर्शन के लाभ के बारे में अवगत कराएगी।'

'ब्रह्मऋषि नारद जी प्रसन्नता से झूमते हुए 'नारायण नारायण' का जाप करते हुए, वीणा बजाते हुए, भगवान् विष्णु के बताए हुए स्थान और वृक्ष के पास पहुंचे। वहां उन्होंने उस चींटी को रेंगते हुए भी देखा। लेकिन जैसे ही ब्रह्मऋषि नारद जी उस चींटी के समीप संत दर्शन का लाभ पूछने पहुंचे, चींटी वृक्ष की छाल से गिरी और मर गई। ब्रह्मऋषि नारदजी आश्चर्यचकित होकर भगवान् विष्णु के पास लौट आए और कर जोड़ प्रभु को सारा वृतांत सुनाया। प्रभु मुस्कुराते हुए बोले, 'कोई बात नहीं ब्रह्मऋषि। इस बार फिर दोबारा तुम पृथ्वी लोक पर अमुक व्यापारी के गृह जाओ। इस व्यापारी के गृह में तुम्हें एक तोता पिंजरे में बंद मिलेगा जो आप ही की तरह हर समय ‘नारायण नारायण’ रटता रहता है। वह अवश्य तुम्हें संत दर्शन के लाभ से अवगत कराएगा।'

'प्रभु की जैसी इच्छा,’ यह कहकर ब्रह्मऋषि फिर पृथ्वी लोक पर आए। प्रभु के बताए स्थान पर उस व्यापारी के गृह में गए और वहां तोता भी देखा जो एक पिंजरे में बंद 'नारायण नारायण' का जाप कर रहा था। ब्रह्मऋषि तोते के समीप पहुंचे। लेकिन इससे पहले कि वह उससे कोई प्रश्न पूछ पाते, तोते की आंखें बंद हो गईं और उसके भी प्राणपखेरू उड़ गए। इस बार तो नारद जी घबरा गए और दौड़े दौड़े फिर भगवान विष्णु के पास पहुंचे।'

ब्रह्मऋषि नारद जी प्रभु से कहने लगे, 'हे प्रभु, यह क्या लीला है? मेरे दर्शन से तो प्राणी मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं। हे प्रभु, मुझे इन हत्याओं का पाप नहीं लगे, ऐसा आशीर्वाद दो। आप जानते ही हैं कि मेरा इसमें कोई दोष नहीं है। मैं तो केवल आपके

निर्देश का पालन कर रहा था। मुझे अपने प्रश्न का उत्तर तो मिल नहीं रहा, अपितु हत्याएं अवश्य हो रही हैं।'

प्रभु फिर मुस्कुराते हुए बोले, 'ब्रह्मऋषि, अवश्य ही तुम्हें कोई ह्त्या का पाप नहीं लगेगा। मेरे कहने से एक बार और अवश्य पृथ्वी लोक पर जाओ और काशी में अभी अभी एक विद्वान् ब्राह्मण के घर पुत्र जन्म हुआ है, वह आपके प्रश्न का उत्तर अवश्य देगा।'

ब्रह्मऋषि नारद जी ने काशी में एक विद्वान् ब्राह्मण के घर जाकर उसके नवजात पुत्र से प्रश्न पूछने पर घबरा कर एक बार फिर प्रभु के चरण पकड़ लिए और बोले, 'हे प्रभु, अब तक तो बात चींटी और तोते की ही थी। अगर मेरे दर्शन से इस ब्राह्मण के पुत्र की ह्त्या हो गई तो ब्रह्महत्या का पाप मुझे लग जाएगा। प्रभु मुझे वहां जाने का निर्देश नहीं दीजिए। मैं अपने प्रश्न का उत्तर फिर कभी आप से पूछ लूंगा।'

लेकिन भगवान् विष्णु ने उन्हें अभयदान दिया और काशी जाने को बाधित किया।

ब्रह्मऋषि नारद जी घबराते हुए प्रभु के आदेश का पालन करते हुए, काशी उस ब्राह्मण के घर पहुंचे। ब्राह्मण ने उनका बड़ा सत्कार किया। ब्राह्मण के प्रौढ़ावस्था होने पर पुत्र प्राप्त हुआ था अतः पूरा समाज बड़े आनन्दोल्लास से उत्सव मना रहा था।

ब्रह्मऋषि नारद जी ने डरते डरते ब्राह्मण से उनके पुत्र से मिलने की इच्छा व्यक्त की, लेकिन कहा, 'वह बस दूर से ही उसे देख आशीर्वाद देना चाहते हैं। समीप नहीं जाएंगे।' ब्राह्मण को विस्मय अवश्य हुआ कि ब्रह्मऋषि उसके पुत्र को स्पर्श कर आशीर्वाद क्यों नहीं देना चाहते? लेकिन सोचा,' जैसी ब्रह्मऋषि की इच्छा।' वह उन्हें अपने पुत्र के पास ले गया। दूर से ही मन ही मन ब्रह्मऋषि ने इस नवजात शिशु से संत दर्शन महिमा के बारे में प्रश्न किया। वह नवजात शिशु हंस पड़ा और बोला, 'महाराज, चंदन को अपनी सुगंध और अमृत को अपने माधुर्य का पता नहीं होता। ऐसे ही आप अपनी महिमा नहीं जानते, इसलिए मुझसे पूछ रहे हैं।'

'वास्तव में आप ही के दर्शन से मुझे चींटी की योनि से मुक्ति मिल पक्षी की योनि में प्रवेश मिला। तब तोते की योनि में आपके दर्शन से मैं एक ब्रह्मपुत्र बना। अब आपके

दर्शन से मैं प्रभु की शरण में आ मोक्ष प्राप्त करूंगा। यह आपके दर्शन का ही प्रभाव है। अब आप मुझे आशीर्वाद दीजिए ताकि मैं प्रभु की लीला गाते गाते अपने शरीर का त्याग करूँ और प्रभु के धाम को पाऊँ।'

ब्रह्मऋषि नारदजी ने तब प्रसन्नता पूर्वक उसे आशीर्वाद दिया और भगवान श्री हरि के पास जाकर सब कुछ बता दिया। भगवान ने कहा, 'हे ब्रह्मऋषि, सत्य में संत दर्शन और सत्संग की बड़ी महिमा है। संत का सही गौरव या तो संत ही जानते हैं या उनके सच्चे प्रेमी भक्त।'

यह कथा सुनाकर गुरुदेव अंतर्ध्यान हो गए। मेरी निद्रा भी टूट गई। मैं उस रात्रि फिर सो नहीं पाया, बस गुरुदेव की कृपा का स्मरण करता रहा।

नियुक्त समय पर स्वामी दामोदरानन्द जी महाराज पधारे। उनके प्रवचन और उनके मधुर स्वर से गाए भजन से यतिन और उसका परिवार बहुत प्रभावित हुआ। बड़े ही ज्ञानी पुरुष थे। उनकी श्रद्धा में यतिन और उसका परिवार नतमस्तक रहता था। उनसे सम्बन्ध घनिष्ठ होता चला गया। कई बार अब वह जब फ़िजी से पर्थ आते तो वह यतिन के घर पर भी निवास करते थे।

स्वामी विवेकानंदजी ने अपने गुरु परमहंस भगवान् श्री रामकृष्ण जी की शिक्षाओं के व्यापक प्रसार के लिए कोलकता के बेलूर के पास ५ मई १८९७ को ‘राम कृष्ण मिशन’ की स्थापना की। परमहंस श्री राम कृष्ण जी स्वयं भगवान् विष्णु के ही अवतार थे इसलिए उन्हें ठाकुर जी नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। उनके स्वयं के कथानुसार, ‘जो त्रेता में थे राम, द्वापर में थे कृष्ण, इस युग में हैं रामकृष्ण।‘

जैसा सर्व विदित है, स्वामी विवेकानंद जी के योगदान का मानव सेवा में महत्वपूर्ण स्थान है। वे रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, और निर्धनता के कटु आलोचक थे। छुआछुत एवं वर्गभेद को भी नहीं मानते थे। 'राम कृष्ण मिशन' के माध्यम से उन्होंने जन कल्याण की भावना को प्रोत्साहित किया। स्वामी दामोदरानन्द जी इसी स्वामी विवेकानंद जी द्वारा संस्थापित श्री राम कृष्ण मिशन के एक अंग थे।

चूँकि समस्त हिन्दू सनातन धर्म परिवार परमहंस ठाकुर श्री राम कृष्ण जी, स्वामी विवेकानंद एवं उनके द्वारा संस्थापित श्री रामकृष्ण मिशन से पूर्ण तरह से परिचित है, इसलिए यहां उसके बारे में कुछ अधिक नहीं कहा जा रहा।

यतिन को स्वामी दामोदरानन्द जी से मिले कोई चार या पांच वर्ष ही बीते होंगे कि यतिन का स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं रहता था। बहुत चिकित्सकों को दिखलाया, संभवतः अंग्रेज़ी चिकित्सा में जितने परीक्षण संभव हो सकते थे, सभी किये, परन्तु न तो बीमारी के कारण का पता लग पा रहा था और न ही स्वास्थ्य लाभ हो रहा था। अपितु स्वास्थ्य और भी अधिक बिगड़ता चला जा रहा था। एक समय तो ऐसा लगने लगा कि संभवतः यतिन अब अधिक दिनों तक इस संसार का अतिथि नहीं रहेगा। तभी भाग्यवश स्वामी दामोदरानन्द जी महाराज का पर्थ आगमन हुआ। इस समय के पर्थ निवास में उनका कार्यक्रम यतिन के घर न रहकर एक और भक्त के घर में ठहरने का था। यतिन उनके आगमन पर स्वागत हेतु हवाई अड्डे अवश्य गया। यतिन को देख स्वामी जी का माथा ठनका। वह समीप आए और बोले, 'लगता है यतिन, तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। घबराना नहीं, ठाकुर जी तुम्हारे साथ हैं।' यह कह उन्होंने यतिन के सर पर अपना हाथ रख कर आशीर्वाद दिया, और कहा वह उनसे मिलने इन भक्त के गृह अवश्य आए।

स्वामी जी का हवाई अड्डे पर स्वागत करने के पश्चात यतिन घर आ गया। आज उसे बहुत थकावट महसूस हो रही थी। सांय संध्या वंदन को अपने गृह-मंदिर में गया। पूजा करने तक की उसमें हिम्मत नहीं हो रही थी। वहीं कालीन पर ही लेट गया। कुछ कुछ बेहोसी आने लगी, संभवतः थकावट के कारण। अचानक अर्ध-निद्रा अवस्था में उसने अनुभव किया कि वह किसी कंदरा में प्रवेश कर रहा है। हिम जैसी ठंडी कंदरा में उसे चारों ओर अन्धेरापन ही दृष्टिगोचर हो रहा था। यतिन उस अँधेरे में भी कंदरा के अंदर जाने लगा। तभी उसने देखा कि एक छाया उसके समीप आ रही थी।

'बड़ी ठण्ड लग रही है न वत्स?', यह कहकर अपना शॉल उस छाया ने यतिन के ऊपर डाल दिया। 'कौन है यह महापुरुष जो अपने स्वास्थ्य की चिंता किये बिना मेरे ठण्ड की परवाह कर रहा है?' ठण्ड, थकान एवं कुंठा से व्यथित होते हुए भी यतिन का हृदय यह जानने को अत्यंत उत्सुक हो रहा था। उसने छाया के पीछे धीरे धीरे चलना प्रारम्भ कर दिया।

'यह क्या? इस कंदरा के गर्भ में प्रकाश?’ यतिन प्रकाश देखकर अचंभित हो गया। ध्यान से अब इन महापुरुष के चहरे को देखने का प्रयास करने लगा। 'ठाकुर श्री राम कृष्ण परमहंस जी महाराज!', उस छाया को पहचान यतिन आश्चर्यचकित हो गया। उनके चरण स्पर्श करने का प्रयास करने लगा लेकिन वह छाया अँधेरे में लुप्त हो गई। यतिन चीखते हुए इस छाया के पीछे भागने का प्रयास करने लगा। लेकिन उसे बेहोसी आने लगी और वह अपना सुध बुध खो बैठा। थोड़ी देर में चेतना लौटने पर उसने अपने आप को एक प्रकाशित प्रतिमा के समीप कुछ सन्यासियों के साथ बैठा पाया।

'कितना सुन्दर वस्त्र पाया है पुत्र, और वह भी ठाकुर जी के दर्शन के साथ, कितने भाग्यशाली हो तुम!', एक धीमा सा स्वर तब यतिन को पीछे से सुनायी पड़ा।

यह तो जाना पहचाना सा स्वर है। यतिन विस्मय से पीछे मुड़कर देखने लगा। स्वर्गीय पितामह को वहां खड़ा देख वह आनंदविभोर हो उठा और फूट फूट कर रोने लगा। 'कहाँ थे बाबा आप अब तक? मुझे आपके मार्गदर्शन की अत्यंत आवश्यकता है। इस जीवन की जटिल समस्याओं ने मुझे अपाहिज कर दिया है। बहुत आहत है आपका यह पौत्र।', कहकर उनके चरणों में लेट गया।

'मैं तो सदैव तुम्हारे साथ ही हूँ पुत्र, और सदैव ही तुम्हारा मार्ग दर्शन करता रहता हूँ। आओ सर्व प्रथम माँ का अभिनंदन करो।' यतिन पितामह के साथ कंदरा में स्थित प्रतिमा के समीप पहुंचकर नमन करने लगता है।

इतने में ही उसकी तंद्रा भंग हो जाती है। यतिन तो अपने घर के छोटे से मंदिर में ही था। न कंदरा, न ठाकुर जी महाराज, न पितामह और न ही माँ की प्रतिमा। लेकिन यतिन सोचने पर विवश हो गया। यह अवश्य ही स्वामी दामोदरानन्द जी द्वारा उसके सर पर रखे हाथ के आशीर्वाद की ही उपलब्धि है कि आज उसने ठाकुर जी, पितामह एवं माँ के दर्शन किये। कवि यतिन के मुख से ठाकुर जी की स्तुति में श्री राम कृष्ण परमहंस चालीसा की रचना हो जाती है।

सन अट्ठारह सौ छत्तीश, अट्ठारह फरवरी दिन ।
जन्मे परमहंस तब, हुए हिय हुलसित सब जन ।।
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस, जन वंदित परम अंश ।(१)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
तुम्हीं सतपंथ के दर्शिता, जीवतत्व ज्ञान समाहिता ।(२)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
नमः नमः श्रेष्ठ गुरुजन, दियो सभी आत्म शिक्षन ।(३)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
गुरु लो अपनी शरण, करें हम धारण कमल चरण ।(४)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
नमन हे प्रभु दिव्य, ध्यान करत मिले सुख सत्य ।(५)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
तुम्हीं विश्व पालनकर्ता, हो चिन्त निवारण कर्ता ।(६)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
स्वामी माँ दिव्य अपर्णा, शारदा विश्व अन्नपूर्णा ।(७)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
अवतरे तुम भक्त रक्षन, किए तुरंत दूर कष्टन ।(८)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
मार्गदर्शक विवेकानंद, दर्शन माँ हिय आनंद ।(९)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
स्तुति परमहंस हे देवन, प्रकाशित चारों भुवन ।(१०)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
शरणागत सब भूजन, प्रभु प्रेरित उत्तम कर्मन ।(११)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
हम करें सुकार्य भगवन, हों शुभ फलयुक्त प्रयत्न ।(१२)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
हो स्वरसंगति विराजन, शान्ति सदैव मेरे आँगन ।(१३)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
हो सत्य हिय अनुसरन, असत्य रहे दूर कोसन ।(१४)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।

हम कर्म फल पावन, प्रभू तेज़ सों पाप नसावन ।(१५)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
हम प्रभु चरण समर्पण, तुम्हीं एक दाह बचावन ।(१६)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
ईश्वर हो ऊर्जा धारित, समस्त शक्ति हैं समाहित ।(१७)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
दो सदगुण हे भगवन, करें कर्म समाज हितजन ।(१८)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
चलें ओर ओज अग्रसन, आत्मबोध अमरत्व गमन ।(१९)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
हों सब अवरोध समापन, हों सफल प्रयास भगवन ।(२०)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
दूर हों सब मोह भ्रम, जानें हम जीवन लक्ष्य मर्म ।(२१)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
एकेश्वर ज्ञान तुम दीना, समझे भिन्न वह ज्ञानविहीना ।(२२)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
स्वर-संगति अति श्रेष्ठा, ईश्वर भक्ति ही बस प्रेष्ठा ।(२३)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
सर्वोच्च ज्ञान तुम दीना, हो सुख सब हिय आसीना ।(२४)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
प्रेम ही नियति संसारा, काटे यह दुःख सम आरा ।(२५)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
प्रेम करे प्रफुल्लित मन, प्रेम दे रचनात्मक जीवन ।(२६)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
प्रेम भावना दे समर्पन, प्रेम ना चाहे प्रतिफलन ।(२७)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
प्रेम दे भयमुक्त जीवन, प्रेम कराए भगवद्दर्शन ।(२८)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
प्रेम है जीवन सजीवता, प्रेम करे दूर सब चिंता ।(२९)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।

प्रेम सों विश्व संगठित, प्रेम जहां वहीं स्वर्ग रहत ।(३०)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
प्रेम है तुम्हरो शिक्षन, हो प्रेम व्यापक हमरे मन ।(३१)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
ना कभी हिय कामुकता, करें कार्य निःस्वार्थता ।(३२)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
रहें शिशु सम अबोधा, जीवन कुटिल हिय दुर्बोधा ।(३३)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
सत्य मधुर हों शब्दन, कृपा करें ईश्वर और संतन् ।(३४)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
पाएं शांति हो शुद्ध मन, यही हैं संतन के लक्षन ।(३५)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
सदैव करें शुभ कर्मा, कटें कष्ट पूर्ण सब अरमा ।(३६)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
भाव हमार हो उच्चतम, जीवन हो सक्रिय उत्तम ।(३७)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
करो कृपा सब भूजन, हो दया सदैव हिय वासन ।(३८)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
स्वच्छ सदैव अंतःकरण, प्रभुधाम पाएं जब मरण ।(३९)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
माया ममता का उत्सादन, यही पथ उन्नति कारन ।(४०)
नमः नमः श्री प्रभू परमहंस।
दो आशीष हे परमहंस, चालीसा हो सदैव हियांश ।
बन प्रभु के अंग अंश, हों भक्तिमय दीन जीवांश ।।

ठाकुर जी की इच्छा या संयोग, जो भी इसे नाम दिया जाय, अगले दिन सांय यतिन के घर पर उसके एक पुराने मित्र का आगमन हुआ। वह यतिन से आग्रह करने लगा कि पर्थ में ही एक प्राकृतिक चिकित्सक को अवश्य दिखाए। उसके अनुसार यह चिकित्सक एक चमत्कारी व्यक्ति है। इसने कई लोगों के, जिसमें विश्व के कई राजघराने भी शामिल हैं, उनकी असाध्य बीमारीओं की सफलतापूर्वक चिकित्सा की है। यतिन अगले दिन इन प्राकृतिक चिकित्सक से मिलने गया। यतिन को बड़ा आश्चर्य

हुआ जब उसके बिना कुछ बताए ही उन्होंने बताया कि यतिन एक रसायन उद्योग में कार्य करता है और उसे रसायन विषाक्ता हो गई है। छै से आठ महीने का समय लग सकता है, परन्तु वह पूर्ण स्वस्थ हो जाएगा। उनकी दी हुई प्राकृतिक औषधियों का यतिन सेवन करने लगा और प्रभु कृपा से तुरंत उसे लाभ हुआ। तीन महीने के समय में तो वह बिलकुल स्वस्थ हो गया।

संत दर्शन के लाभ का यतिन ने इसी जन्म में ज्ञान कर लिया।

यतिन को इन चिकित्सक महोदय ने तुरंत यह नौकरी छोड़ देने का भी परामर्श दिया। अब पर्थ या ऑस्ट्रेलिया में अभाग्य से मनचाही नौकरी कहाँ मिलती है? यतिन एक पारिवारिक गृहस्थ था। उसे घर परिवार चलाने के लिए पैसों की भी आवश्यकता थी। अगर यह नौकरी छोड़ दी तो घर का व्यय कैसे चलेगा? इसी दुविधा में यतिन था तभी ठाकुर जी और गुरुदेव ने एक और चमत्कार किया। यतिन के पास उसके पी एच डी पर्यवेक्षक प्रोफेसर का ऑस्ट्रिया से सन्देश आया। मलेशिया में एक उद्योगपति ने उनकी सेवाएं ली हैं तथा उनके परामर्श से एक उद्योग लगाया जा रहा है, जहाँ उन्हें यतिन की आवश्यकता है, 'मुख्य तकनीकी अधिकारी' के रूप में। अगर यतिन को स्वीकार हो तो तुरंत वह मलेशिया प्रस्थान करे। यतिन को तो इस अवसर की तलाश ही थी। तुरंत अपना स्वीकृति सन्देश भेज दिया और मलेशिया जाने की तैयारी करने लगा।

जिस दिन मलेशिया से इस नई कंपनी में यतिन को 'मुख्य तकनीकी अधिकारी' के पद का नियुक्ति पत्र आया, उस दिन एक और रोचक घटना हुई। जब यतिन अपने गृह-मंदिर में साधना में लीन था तो उसे ऐसा आभास हुआ कि उसके गुरुदेव श्री शिर्डी साईं नाथ मलेशिया जाने से पहले उसे शिर्डी आ आशीर्वाद लेने के लिए आमंत्रित कर रहे हैं। साधना से उठने के तुरंत बाद यतिन ने शिर्डी जाने का कार्यक्रम बनाया। उसके बड़े भाई उस समय मैसूर में एक भारत सरकार के अणु ऊर्जा विभाग की एक महत्वपूर्ण योजना के मुख्य प्रबंधक थे। उसने उनसे प्रार्थना की कि अगर उनका कोई मित्र मुंबई में उसे हवाई अड्डे पर मिल जाए, और उसका शिर्डी जाने का यथा संभव प्रबंध कर दे तो यात्रा सुखद हो सकती है। संयोग से उसके बड़े भाई ने तुरंत उत्तर दिया कि इस दिनांक को वह स्वयं किसी विशेष कार्य से मुंबई में उपस्थित होंगे और अपने एक मित्र के साथ उसे लेने मुंबई हवाई अड्डे पर स्वयं ही आएँगे। यतिन बहुत

प्रसन्न हुआ। एक पंथ दो काज। बाबा के दर्शन तो होंगे ही, भाई से भी मिलन हो जाएगा। वह बड़े भाई से लगभग चार वर्ष से नहीं मिला था।

निर्धारित समय पर यतिन का विमान मुंबई हवाई अड्डे पर पहुंचा। उसी समय सऊदी अरबिया से हज़ कर लौट रहे दो बड़े विमान भी हवाई अड्डे पर उतरे। एक साथ ही कई विमानों के आने से मुंबई हवाई अड्डे पर कदम रखने की जगह भी नहीं थी। यतिन दुर्भाग्य से संवृतिभीत (क्लॉस्ट्रोफोबिक) था। उसका हवाई अड्डे पर दम घुटने लगा। किसी प्रकार अपना सामान लेकर आप्रवासन से निकल वह बाहर निकलने के मार्ग पर जब चल रहा था तो उसको बाहर का दृश्य देख चक्कर आने लगे। भारत में ऐसी परम्परा है कि जब कोई सम्बन्धी अथवा मित्र हज़ से वापस लौटता है तो उसके स्वागत में लगभग सौ या उससे भी अधिक प्रति व्यक्ति उसके स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर आते हैं। ऐसी मान्यता है कि इससे उन सभी को भी हज़ करने का पुण्य मिलता है। इतनी भीड़ थी बाहर कि यतिन को लगने लगा कि वह बाहर नहीं निकल पाएगा, और निकल भी गया तो भाई को कैसे ढूंढेगा? उसे शिर्डी बाबा का स्मरण हो आया। उसके मुख से दर्द भरे शब्द निकले, 'हे शिर्डी नाथ, मैं आपके आमंत्रण पर भारत आया हूँ। मुझे इस वातावरण से निकालिए।' यतिन की इस किंकर्तव्यविमूढ़ दशा देखकर लगता है वहां उपस्थित एक पुलिस अधिकारी को दया आ गई। तुरंत आया यतिन के पास और बोला, 'शीघ्र मेरे साथ आओ। मैं तुम्हें आपातकालीन द्वार से निकाले देता हूँ। सोचने का समय नहीं था। यतिन चुपचाप उसके पीछे चल दिया। उसने आपातकालीन द्वार खोला, यतिन को धक्का देकर बाहर निकाल दिया और तुरंत द्वार बंद कर दिया। अब यतिन हवाई अड्डे से बाहर तो आ गया, लेकिन यह तो बड़ी सुनसान सी जगह थी। यतिन को तो इस हवाई अड्डे का दिशा ज्ञान भी नहीं था। वह हवाई अड्डे के मुख्य द्वार तक कैसे पहुंचे जहां उसके भाई उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। यह तो वही स्थिति हो गई, 'आसमान से टपके, खजूर में लटके'। यतिन की चिंता और बढ़ गई। इतने में ही यतिन ने देखा कि कोई उसके कंधे को थपक रहा है। मुड़कर देखा, यह तो भाई साहेब के मित्र हैं जिनसे यतिन कई बार मिल चुका था। प्रणाम कर यतिन बोला, 'भाई साहेब, आप यहां? बड़े भाई कहाँ हैं?' भाई साहेब के यह मित्र बोले, ‘तुम्हारे बड़े भाई मुख्य द्वार पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहें हैं। मैं भी उन्हीं के साथ था। परन्तु तुम तो जानते ही हो मुझे धूम्रपान की आदत है। मैं धूम्रपान के लिए एकांत जगह ढूंढते हुए इस स्थान पर आया और तुम्हें यहां देख अचंभित हो गया। अब तुम यहीं मेरी प्रतीक्षा करो, मैं तुम्हारे भाई को लेकर आता हूँ।'

‘हे शिर्डी नाथ, तुम अनंत, तुम्हारी माया अनंत‘, अनायास ही निकल पड़ा यतिन के मुख से।

उसके बाद भाई तो अगले दिन ही मैसूर वापस चले गए, परन्तु भाई साहेब के यह मित्र यतिन के साथ शिर्डी तक गए। वह स्वयं भी शिर्डी साईं नाथ के भक्त थे। उनकी शिर्डी मंदिर में जान पहचान से यतिन को अति विशिष्ट व्यक्ति का सम्मान मिला। बाबा के दर्शन कर, उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर, यतिन ऑस्ट्रेलिया लौटा और समय आने पर मलेशिया प्रस्थान कर गया।

मलेशिया में यतिन इस कंपनी के अनुबंध के अनुसार तीन वर्ष तक रहा। मलेशियन कंपनी तो उसका कार्यकाल बढ़ाना चाहती थी परन्तु अब वह वापस घर ऑस्ट्रेलिया जाना चाहता था। इस पूरे तीन वर्ष यतिन अकेला ही मलेशिया में रहा। उसकी पत्नी एवं पुत्र ऑस्ट्रेलिया में ही निवास करते रहे। उसकी पत्नी अध्यापिका के पद पर कार्यरत थीं और पुत्र माध्यमिक शिक्षा ले रहा था। उनको विस्थापित करना कोई बुद्धिमता का कार्य नहीं था। हाँ, समय समय पर विद्यालय की छुट्टीओं पर उसका परिवार मलेशिया आता रहता था या यतिन ऑस्ट्रेलिया जाता रहता था।

मलेशिया से वापस आकर यतिन ने खनिज उद्योग में नौकरी कर ली। कुछ समय बाद उसने नौकरी छोड़ अपनी ही एक छोटी सी परामर्श कंपनी खोल ली। समय बीतता गया। यतिन की बड़ी इच्छा थी कि जिस समाज ने उसको सब कुछ दिया है, उस समाज को कुछ तो वापस करना चाहिए। यतिन का झुकाव सनातन धर्म की ओर सदैव से ही रहा था। उसके एक घनिष्ठ मित्र डॉ जुगल किशोर अगरवाला जी ने उसका साथ दिया, और दोनों ने मिलकर एक धार्मिक संस्था, 'श्री राम कथा संस्थान' की स्थापना की।

श्री राम कथा संस्थान की स्थापना

यतिन ने ऐसा अनुभव किया कि ऑस्ट्रेलिया में रह रही युवा पीढ़ी का ज्ञान हिन्दू सनातन धर्म के महान ऋषिओं, मुनीओं, और माताओं के प्रति न्यूनतम है। मंदिर तो अनेक हैं, लेकिन इन मंदिरों में अधिकाँशतः परम्परागत भगवान् और देवीओं की पूजा ही विधिवत होती है। धर्म का नैतिकता के साथ जोड़ने का प्रयास कम ही किया जाता है। नैतिक मूल्यों का वर्धन जीवन में मानव के उत्थान के लिए अत्यंत आवश्यक है। नैतिक मूल्यों का जीवन में समावेश करने के कई साधन हो सकते हैं, परन्तु संभवतः हमारे सनातन धर्म के महान ऋषिओं, मुनीओं एवं माताओं की जीवन गाथा एवं उनके बलिदानों से अवगत कराना एक उचित माध्यम हो सकता है। ऐसा विचार कर यतिन ने अपने घनिष्ठ मित्र डॉ जुगल किशोर अगरवाला जी के साथ ‘श्री राम कथा संस्थान’ की संस्थापना सन २०१६ में की।

यतिन तो शिर्डी साईंनाथ का शिष्य है, फिर श्री राम और शिर्डी साईं बाबा में क्या सम्बन्ध?

शिर्डी साईंनाथ भगवान् श्री राम गुरु परम्परा की श्रंखला में आधुनिक युग के प्रतिनिधि ही तो थे। 'श्री साईं सच्चरित्र' में उल्लेख है कि शिर्डी साईं बाबा को श्री राम से अत्यधिक प्रेम था। श्री राम नवमी का उत्सव उन्होंने ही बड़े धूम धाम से अपने जीवन काल में ही शिर्डी में प्रारम्भ कर दिया था। आज भी श्री राम नवमी शिर्डी में मनाया जाने वाला सबसे बड़ा उत्सव है।

श्री शिर्डी साईंबाबा 'विष्णु सहस्त्नाम स्त्रोत्र' को सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ मानते थे। अपने सबसे प्रिय शिष्य श्यामा को उन्होंने 'विष्णु सहस्त्नाम स्त्रोत्र' को भेंट करते हुए कहा, 'श्यामा यह अमूल्य और मनोवांछित फल देने वाली पुस्तक है। इसलिये मैं तुम्हें इसे प्रदान कर रहा हूँ ताकि तुम इसका नित्य पठन करो। एक बार जब मैं अधिक रुग्ण था तो मेरा हृदय धड़कने लगा। मेरे प्राण पखेरु उड़ना ही चाहते थे कि उसी समय मैंनें इस सदग्रन्थ को अपने हृदय पर रख लिया। कैसा सुख पहुँचाया इसने। उस समय मुझे ऐसा ही भान हुआ मानों ईश्वर ने स्वयं ही पृथ्वी पर आकर मेरी रक्षा की। इस कारण यह ग्रन्थ मैं तुम्हें दे रहा हूँ। इसे थोड़ा धीरे धीरे, कम से कम एक श्लोक प्रतिदिन अवश्य पढ़ना, जिससे तुम्हारा बहुत भला होगा।'

यह व्यक्तव्य इस को स्पष्ट करता है कि श्री शिर्डी साईंबाबा का भगवान् विष्णु से सीधा सम्बन्ध था। भगवान् श्री राम भगवान् विष्णु के ही तो अवतार थे, अतः शिरडी साईं बाबा का सीधा सम्बन्ध श्री राम से है।

शिर्डी साईंबाबा को उनके भक्त भगवान् शिव का ही एक अंश मानते हैं। साईं बाबा के जीवन परिचय से यह स्पष्ट है कि हिन्दू सनातन नाथ पंथ की भावना के साथ साथ शिरडी साईं बाबा सूफी मत का सम्मान करते थे। उनके लिए मानवता का स्थान किसी धर्म, जाति अथवा सामाजिक स्तर से कहीं उच्च था। उनकी शिक्षाएं पूर्णतः संत कबीर की शिक्षाओं पर आधारित थीं। शिर्डी साईं बाबा को उनके भक्त संत कबीर के ही अवतार के रूप में देखते हैं। ऐसा ही यतिन को माँ आनंदमयी ने भी संकेत दिए थे। संत कबीर भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी के शिष्य थे। भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी को इस युग में भगवान् श्री राम का अवतार माना जाता है। स्वामी श्री रामानंद जी से रामानंदी सम्प्रदाय का प्रारम्भ हुआ, जिसके संत कबीर एक महत्वपूर्ण भाग थे। स्वामी श्री रामानंद जी की महासमाधि के पश्चात संत श्री कबीर जी ने श्री रामानंदी सम्प्रदाय का मार्ग दर्शन किया। अतः शिर्डी साईं नाथ का संत कबीर के साथ सम्बन्ध होने के कारण वह रामानंदी सम्प्रदाय के ही एक संत माने जा सकते हैं।

यह भी एक संयोग ही कहिए। यतिन के पितामह श्री रामानंदी सम्प्रदाय के समर्थक थे। यतिन को उन्हीं से सम्प्रदाय के बारे में ज्ञान और श्रद्धा प्राप्त हुई। फिर जब शिर्डी साईंनाथ ने उसको अपना शिष्य स्वीकार कर स्वप्न में दीक्षित किया तो उसका हृदय भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी एवं शिर्डी साईंनाथ के सम्मान के प्रति नतमस्तक हो गया और उसने अपने मित्र के साथ श्री रामानंदी सम्प्रदाय के सिद्धांतों पर आधारित एक संस्था, 'श्री राम कथा संस्थान' की संस्थापना की।

भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी उदार भक्ति के मार्ग दर्शिता थे। उन्होंने धर्म विशेष एवं जाति-पाति से हटकर केवल एक ही सिद्धांत पर अपने शिष्य बनाए।

जाति पाति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि कौ होई।

उनके शिष्यों में ब्राह्मण, जाट, राजपूत, स्त्रियाँ और मुसलमान सभी शामिल थे। उनका कथन था कि भक्ति का द्वार सभी के लिए मुक्त है। यही शिक्षाएं शिर्डी साईंनाथ ने भी दीं।

यहां पाठकों को श्री रामानंदी सम्प्रदाय के बारे में कुछ बता देना उचित होगा जिससे वह इस सम्प्रदाय के उच्च विचारों से अवगत हो सकें।

श्री रामानंदी सम्प्रदाय के प्रवर्तक भगवान् स्वामी श्री रामानन्दाचार्य का जन्म सम्वत् १२३६ में प्रयाग में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री पुण्यसदन और माता का नाम श्रीमती सुशीला देवी था। उनकी माता वेणी माधव भगवान की भक्त थीं। एक दिन मन्दिर में जब वह वेणी माधव भगवान के दर्शन करने गईं तो उन्हें दिव्य वाणी सुनाई दी, 'हे माता, पुत्रवती हो।' और इसके साथ ही उनके आँचल में एक माला और दाहिनार्त शंख प्रकट हो गए। वह प्रसाद पाकर अत्यंत प्रसन्न हुईं और पतिदेव को सारी बात बताई। इसके पश्चात माता ने देखा कि आकाश से एक प्रकाश पुंज आ कर उनके मुख में समा गया। उस दिन से उनके शरीर में एक शक्ति का संचार होने लगा। समय आने पर शुष्लग्न प्रातःकाल में आचार्य श्री रामानंद जी प्रकट हुए। उनके प्रकट होने के समय माता को बिल्कुल पीड़ा नहीं हुई। श्री पुण्यसदन जी के घर पुत्र जन्म के समाचार से समूचा प्रयाग नगर उनके गृह बधाई देने के लिए उमड़ पड़ा। नाम-करण संस्कार पर कुल पुरोहित जी ने उनका नाम रामानन्द रखा। जन्म से ही रामानंद जी के शरीर पर कई दिव्य चिन्ह थे। माथे पर तिलक का निशान था। उनके बचपन में एक तोता प्रतिदिन उनके पास आता और 'राम-राम' का शब्द उच्चारण करता। यह 'राम-राम' का शब्द उनके जीवन का आधार बन गया। भादों के महीने में ऋषि-पंचमी के दिन अन्न प्रक्षालन का उत्सव मनाया गया। थाल में पकवान, खीर और लड्डू रखे गए, लेकिन बालक रामानन्द ने केवल खीर को ही चाटा। पाठकों को स्मरण होगा कि महर्षि श्रंगी द्वारा किए हुए सम्राट दशरथ के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ में खीर के प्रसाद से ही भगवान् श्री राम और उनके अन्य तीनों भाई, भरत, शत्रुघ्न एवं लक्ष्मण जी ने इस पृथ्वी पर अवतार लिया था।

एक दिन बालक रामानन्द खेलते हुए गृह-मन्दिर में जा पहुंचे। उन्होंने वहां रखा हुआ दाहिना्रत शंख उठा लिया और बजाने लगे। दाहिना्रत शंख को बजाने की एक विशेष विधि होती है। संभवतः पिता ने सोचा कि वह विशेष विधि बच्चे को पता नहीं

है, कहीं इससे अनर्थ न हो जाए अतः उन्होंने बच्चे के हाथ से शंख छीन लिया और क्रोधित होने लगे। तत्काल वेणी माधव भगवान प्रगट हुए और उन्होंने पिता को शंख बालक को वापस देने की आज्ञा दी। बालक से यह भी कहा कि प्रात:काल प्रतिदिन तुम्हीं यह शंख बजाओगे। उस दिन से बालक रामानन्द दिन में तीन बार उस शंख को बजाने लगे। पांच साल की अवस्था होने पर पिता ने बच्चे का शास्त्र अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। पिता श्लोक बोल समाप्त भी नहीं कर पाते थे कि श्री रामानंद जी उसे कंठस्थ कर लेते थे। एक वर्ष में ही बालक रामानन्द ने सभी ग्रन्थों को कण्ठस्थ कर लिया। उसी समय प्रयाग कुम्भ में विद्वानों की एक सभा हुई। इसमें बालक रामानन्द को भी आमंत्रित किया गया। सभी विद्वानों ने इसमें मनुष्य जीवन और जीवन लक्ष्य के बारे में अपने अपने मत रखे। बालक रामानंद ने कहा, 'जैसे कमल के दल पर पानी की बूंद लटकती है वैसे ही जीवन इस पृथ्वी पर लटकता है। पता नहीं कब उसके जाने का समय आ जाए? इसलिए वाद-विवाद छोड़ केवल भगवान की भक्ति ही करनी चहिए।' इस पर सभी विद्वानों और भक्तों ने उनकी प्रशंसा की।

आठ वर्ष की अवस्था में बालक का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। बाद में वह विद्या अध्ययन के लिए काशी चले गए। उनकी भगवद्भक्ति से प्रसन्न एक दिन सिद्ध देवी माँ ने साक्षात दर्शन दिए। देवी ने उनसे संस्कृत में प्रश्न पूछा, 'हे कुमार, वह कौन सी स्त्री है जो बड़ी चंचल है और चित्त में छुपी रहती है? वह नित्य आकर्षिक नए नए पदार्थ से व्यक्तिओं को लुभाती है। परन्तु एक बार कोई उन पदार्थों का आनंद चख लेता है तो वह उसकी बुद्धि को भ्रमित कर देती है।' इस पर बालक रामानन्द ने उत्तर दिया, 'हे देवी, उस स्त्री का नाम माया है।' तब देवी माँ ने कहा, 'उससे विवाह करोगे?' तब कुमार ने कहा, 'हे देवी उसकी इच्छा करते ही हृदय और मस्तिष्क दोनों ही भ्रमित हो जाते हैं। विवाह के समय मनुष्य कामांध हो जाता है। माँ, यह स्त्री रूपी माया ही मनुष्य को अंधा बना देती है। मैं तो ब्रह्मचारी हूं, माँ। सारे जगत का कल्याण करने का संकल्प लिया है। मैं कैसे विवाह कर लूँ?' तब देवी ने आशीर्वाद दिया, 'ऐसा ही होगा', और वहां से चली गईं। वह माता साक्षात् कालिका देवी माँ थीं। माँ का यह आशीर्वाद सुन उनके पिता को सुख के स्थान पर बड़ा दुःख हुआ। वह तो शांडिल्य गोत्र के एक ब्राह्मण की कन्या माधवी से उनका विवाह तय कर चुके थे। उन्होंने पुत्र से कुमारिल भट्ट की मीमांसा का उदाहरण देकर समझाने का प्रयास किया, जिसमे लिखा था कि मनुष्य को एक बार विवाह अवश्य करना चाहिए। 'हे पिता जी, ज्ञान और भक्ति की सिद्धि अगर बाल्यकाल में ही हो जाए, तो विवाह न करने पर भी कोई

पाप नहीं लगता', ऐसा तर्क देकर उन्होंने पिता को शांत करने का प्रयास किया। पिता ने फिर भी यही समझा कि अभी वह बच्चे हैं, अतः कुमारिल भट्ट के ग्रन्थ का मर्म नहीं समझते और विवाह की तैयारी में लग गए। कन्या माधवी ने उसी समय स्वप्न में देखा कि उसके कुल देवता कह रहे हैं कि अगर उसने रामानन्द से विवाह किया तो वह विधवा हो जाएगी। उसने यह वृतांत अपने माता पिता को सुनाया। उन्होंने विवाह का कार्यक्रम रद्द कर दिया। कन्या माधवी ने तब जीवन भर अविवाहित रहने की ठान ली और कठोर तप करने लगीं। अन्न त्याग कर केवल लौंग खाकर रहने लगीं। तब उन्हें दूसरा स्वप्न आया, 'हे पुत्री, जिससे तुम्हारा विवाह होने वाला था, जाकर उसी से उपदेश लो तो तुम्हारा शीघ्र कल्याण होगा।' दूसरे दिन प्रातःकाल ही वह अपने परिवार के साथ रामानन्द जी के सामने प्रस्तुत हुईं, और मन्त्र दीक्षा लेने की मांग करने लगीं। रामानन्द जी उस समय स्वयं दीक्षित नहीं थे। अतः उन्होंने इस पर अपनी विवशता दिखाई। उनके अधिक हठ करने पर रामानन्द जी ने अपने शंख को बजा दिया। शंख ध्वनि सुनते ही माधवी की समाधि लग गई। समाधि लगते ही माधवी को दस जन्मों का स्मरण हो आया, उन्होंने कहा, 'मुझे भगवान से दिव्य ज्ञान मिल गया है। मैं अभी उनके श्री धाम जा रही हूं।' उनके इतने कहने पर ही एक दिव्य विमान वहाँ प्रकट हुआ, और वह विमान पर बैठ कर प्रभु के लोक चली गईं। इस पर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

रामानंद जी के माता पिता ने भी उनसे दीक्षा लेने की बात कही। माता पिता को दीक्षित करने के विचार मात्र से रामानन्दाचार्य बहुत लज्जित महसूस करने लगे। वे वहीं बैठे बैठे अन्तर्ध्यान हो गए। उनके अंतर्ध्यान होने से माता पिता मूर्छित होकर गिर पड़े। तब उन्हें दिव्य धाम के दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि कुमार रामानन्द दिव्य सिंहासन पर बैठे थे, और सभी देवी, देवता और ऋषिगण उनकी स्तुति कर रहे थे। यह देख उनका मोह माया का बंधन छूट गया, और उन्होंने शरीर त्यागने की इच्छा की। उसी समय योग बल से महर्षि राघवानन्द जी वहां प्रकट हो गए। महर्षि वशिष्ठ के अवतार महर्षि राघवानन्द जी के प्रकट होते ही समस्त नर नारी उनके चरणों में जा पड़े। उन्होंने तब बताया कि स्वयं भगवान् श्री राम ने रामानंद के रूप में अवतार लिया है। वह बारह वर्ष तक आपके घर में बाल लीला करेंगे। आप उसका आनन्द उठाएं, तत्पश्चात आप प्रभु लोक को प्रस्थान करें। तब महर्षि राघवानन्द जी ने राम यज्ञ किया। राम यज्ञ की समाप्ति पर रामानंद जी प्रगट हो गए। महर्षि राघवानन्द जी ने उन्हें राम मंत्र की दीक्षा देकर विधिवत वैष्णव संन्यास दिया। रामानन्द जी ने तब पंच गंगा घाट पर तपस्या

की। लोगों के दुःख सुन बस वह शंख बजाकर उनकी समस्याओं का समाधान कर देते थे। एक समय कलि उनके सामने प्रकट हुये। स्वामी जी का पंच-पात्र सोने का था। कलि उसमें जा बैठे, लेकिन आचार्य को इसका पता चल गया। जब आचार्य ने उनसे पूछा कि आप मेरी पूजा में विघ्न क्यों डालते हो तो कलि प्रत्यक्ष होकर राम मंत्र की दीक्षा मांगने लगे। रामानन्दाचार्य जी ने तब उन्हें मंत्र दीक्षा दी।

रामानन्द जी ने अपने जीवन काल में अनेक दुखियों और पीड़ितों को अपने आशीर्वाद से लाभ पहुंचाया। एक राजकुमार को क्षय रोग से मुक्ति, संत रैदास जी को दीक्षा, संत कबीर जी को शिष्यत्व आदि उल्लेखनीय हैं। उन्हीं के तपोबल से रामानन्द सम्प्रदाय एक विशाल पंथ के रूप में विकसित हुआ।
भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी के समय में समाज के विभिन्न मत और पंथ संप्रदायों में घोर वैमनस्यता और कटुता थी। उन्होंने इसको दूर कर हिंदू समाज को एक सूत्रबद्धता का सराहनीय कार्य किया। स्वामी जी ने मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम को आदर्श मानकर सरल राम-भक्ति मार्ग का निर्देशन किया। उनकी शिष्य मंडली में जहां एक ओर कबीरदास, रैदास, सेननाई और पीपा नरेश जैसे जाति-पाति, छुआ-छूत, वैदिक कर्मकांड, मूर्तिपूजा के विरोधी निर्गुणवादी संत थे, तो दूसरे पक्ष में अवतारवाद के पूर्ण समर्थक मूर्तिपूजा करने वाले स्वामी अनंतानंद, स्वामी भावानंद, स्वामी सुरसुरानंद, स्वामी नरहर्यानंद जैसे सगुणोपासक आचार्य भक्त भी थे। उसी परंपरा में योगी कृष्णदत्त पयोहारी जैसे तेजस्वी साधक और गोस्वामी तुलसीदास जी जैसे महान राम-भक्त और महाकवि भी थे। भगवान स्वामी श्री रामानंद जी ने तारक राम-मंत्र का उपदेश एक पेड़ पर चढ़कर दिया था ताकि सब जाति के लोगों के कानों में यह मधुर सन्देश जाए, और अधिक से अधिक लोगों का कल्याण हो सके।

स्वामी जी का सन्देश, **सर्व प्रपत्तिधरकारिणो मताः**, मोक्ष दिलाने वाला मन्त्र है। मध्ययुगीन धर्म साधना के केंद्र में स्वामी जी की स्थिति चतुष्पथ के दीप-स्तंभ जैसी मानी जाती है। उन्होंने अभूतपूर्व सामाजिक क्रांति का श्री गणेश करके बड़ी जीवटता से समाज और संस्कृति की रक्षा की। उन्हीं के चलते उत्तर भारत में तीर्थ क्षेत्रों की रक्षा और वहां सांस्कृतिक केंद्रों की स्थापना संभव हो सकी। उस युग की परिस्थितियों के अनुसार उन्होंने वैरागी साधु समाज को अस्त्र-शस्त्र से सज्जित एवं संगठित कर तीर्थ स्थलों की रक्षा के लिए धर्म का सक्रिय मूर्तिमान बनाकर खड़ा किया। तीर्थ स्थानों से लेकर गांव गांव में वैरागी साधुओं के अखाड़े स्थापित किए।

आज जब धर्म एक प्रकार से लोप हो रहा है, इस विषम अवस्था में भी संपूर्ण विश्व में रामानंद सम्प्रदाय के मठ, संत, भक्त आदि अखंड राम संकीर्तन करते हुए विश्व को मार्ग दिखाने का एवं सर्वत्र आध्यात्मिक आलोक प्रसारित करने का प्रयास कर रहे हैं। यह स्वामी रामानंद जी के ही व्यक्तित्व का प्रभाव था कि हिंदू-मुस्लिम वैमनस्यता, शैव-वैष्णव विवाद, वर्ण-विद्वेषता, मत-मतांतर का विवाद और परस्पर सामाजिक कटुता लगभग समाप्त हो गई थी। उनके ही यौगिक शक्ति के चमत्कार से प्रभावित होकर तत्कालीन मुगल शासक मोहम्मद तुगलक संत कबीर दास के माध्यम से स्वामी रामानंदाचार्य की शरण में आया, और हिंदुओं पर लगे समस्त प्रतिबंध और जजिया कर को हटाने का निर्देश जारी किया। बलपूर्वक इस्लाम धर्म में दीक्षित हिंदुओं को फिर से हिंदू धर्म में वापस लाने के लिए परावर्तन संस्कार का महान कार्य सर्वप्रथम स्वामी रामानंद जी ने ही प्रारंभ किया। इतिहास साक्षी है कि अयोध्या के राजा हरिसिंह के नेतृत्व में चौंतीस हजार मुसलमानों को जो राजपूत जाति से धर्म परवर्तित थे, को एक ही मंच से स्वामी जी ने स्वधर्म अपनाने के लिए प्रेरित किया था। स्वामी रामानंद ने श्री मठ की गुह्य साधनास्थली में प्रविष्ट हो राममंत्र का अनुष्ठान तथा अन्यान्य तांत्रिक साधनाओं का प्रयोग करते हुए घोर तपश्चर्या की। योगमार्च की तमाम गुत्थियों को सुलझाते हुए उन्होंने अष्टांग योग की साधना पूर्ण की। अपने संबोधन में स्वामी रामानंदाचार्य जी ने हिंदू समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं अंधविश्वासों को दूर करने तथा परस्पर आत्मीयता एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार से धर्म रक्षार्थ विराट संगठित शक्ति खड़ा करने के संकल्प व्यक्त किए। उन्होंने श्री सम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत दर्शन और प्रपतिसिद्धांत को आधार बनाकर सम्प्रदाय का संगठन किया। बाह्य सदाचार की अपेक्षा साधना में आंतरिक भाव की शुद्धता पर ध्यान दिया। छुआछूत, ऊंच-नीच का भाव मिटाकर वैष्णव मात्र में समता का समर्थन किया। नवधा से भी परा और प्रेमासक्ति को श्रेयकर बताया। साथ साथ सिद्धांतों के प्रचार में परंपरा पोषित संस्कृत भाषा की अपेक्षा हिंदी अथवा जनभाषा को प्रधानता दी। स्वामी रामानंद जी ने 'विशिष्टाद्वैत सिद्धांतनुगुण स्वतंत्र आनंद' आदि महान भाष्यों की रचना की। तत्व एवं आचारबोध की दृष्टि से 'वैष्णवमताब्ज भास्कर', 'श्रीरामपटल', 'श्रीरामार्चनापद्धति', 'श्रीरामरक्षास्त्रोतम' जैसे अनेक कालजयी मौलिक ग्रंथों की रचना की। स्वामी रामानंद जी के द्वारा दी गई देश धर्म के प्रति इन अमूल्य सेवाओं ने सभी संप्रदायों के वैष्णवों के हृदय में उनका महत्व स्थापित कर दिया। भारत के सांप्रदायिक इतिहास में परस्पर विरोधी सिद्धांतों तथा साधना पद्धतियों के अनुयायियों के बीच इतनी लोकप्रियता उनके पूर्व किसी संप्रदाय प्रवर्तक को प्राप्त न हो सकी। महाराष्ट्र के

नाथपंथियों ने ज्ञानदेव के पिता विट्ठल पंत के गुरू के रूप में उन्हें पूजा। अद्वैत मतावलंबियों ने ज्योतिर्मठ के ब्रह्मचारी के रूप में उन्हें अपनाया। बाबरीपंथ के संतों ने अपने संप्रदाय के प्रवर्तक मानकर उनकी वंदना की। संत कबीर के गुरू तो वे थे ही, इसलिए कबीरपंथियों में उनका आदर स्वाभाविक है। स्वामी रामानंद जी के व्यक्तित्व की इस व्यापकता का रहस्य उनकी उदार एवं सारग्राही प्रवृति और समन्वयकारी विचारधारा में निहित है। निश्चय ही उनके विराट व्यक्तित्व एवं व्यापक महत्ता के अनुरूप कतिपय आर्षग्रंथ एवं संत साहित्य में उल्लेखित उनके रामावतार होने का वर्णन अक्षरशः प्रमाणित होता है।

रामनंदः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले।

इन महान संत स्वामी श्री रामानंद जी के चरणों को हृदय में धारण कर यतिन ने श्री राम कथा संस्थान की संस्थापना की।

पिछले कई वर्षों से यतिन श्री राम कथा का आयोजन करता रहा है। अनगिनत पुस्तकों के लेखन एवं उनके माध्यम से उस का प्रयास रहा कि हिन्दू समाज की युवा पीढ़ी अपने महान ऋषिओं, माताओं और देश प्रेमीओं का अनुसरण कर एक नैतिक जीवन बिताएं जिससे उन्हें हृदय की शान्ति प्राप्त हो। अनेक भजन और काव्यों की भी उसने रचनाएं की हैं।

आज यतिन ने अपना जीवन भगवान् श्री राम और अपने गुरु शिर्डी साईंनाथ के चरणों में अर्पित कर दिया है। अपने सभी व्यवयासिक कार्यों से अवकास ले, तन मन धन से वह इसी कार्य में जुटा हुआ है। उसकी सफलता का आंकलन करना तो कठिन है लेकिन उसको आंकलन की आवयश्कता भी नहीं है। वह तो बस जितना संभव हो सके, प्रभु के स्मरण में ही अपना समय बिताता है।

सभी से इस प्रार्थना के साथ कि यतिन के इस कार्य में अपने अपने क्षेत्र में सभी सहयोग करें और भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी के मत को जन जन तक पहुचाएं, मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

जीवन है एक युद्ध वंशत्र, हेतु विजय अनिवार्य प्रपत्र ।
चाह घनी पर सीमित सत्र, पूर्ण अभीष्ट हो इसी अत्र ।।(१)
लक्ष्य साधन है एक मन्त्र, विकसित कर सांद्रण यंत्र ।
शौर्य धैर्य हैं प्राप्ति तंत्र, न हो कभी विचलित हृदयंत्र ।।(२)
विश्व तो है चक्रव्यूह सामन्त्र, सम अभिमन्यु भंग यन्त्र ।
विवेक सदैव हो हियान्त्र, नेक कर्म सों प्रशस्त भूजंत्र ।।(३)
अनुसरण मर्यादा मंत्र, सफलता का एक अचल यंत्र ।
कर्म क्षेत्र हो धर्म संत्र, हृदय वसुधैव कुटुंबकम मन्त्र ।।(४)
ॐ विश्वम विष्णु मन्त्र, करो सदैव उच्चरित हृदयान्त्र ।
शुभ कामनाएं दें वृद्धजंत्र, कृपा करें प्रभु प्रत्येक संत्र ।।(५)
स्मरण रहे नैतिक मन्त्र, आदर वृद्ध मात पित जंत्र ।
शब्द सदैव मधुर मुखंत्र, सुखद जीवन का है मन्त्र ।।(६)
लोभ मोह मद हों अन्यंत्र, न करो धर्षण कोई भूजंत्र ।
सत्य प्रेम निष्कपट संत्र, हों लक्ष्य बस यही सब मन्त्र ।।(७)
अहिंसा प्रेम सद्भाव यंत्र, जन कल्याण विकास मन्त्र ।
हृदय आसीन हों ये तंत्र, मातृ भूमि प्रेम सदा हियान्त्र ।।(८)
यतेंद्र करे कामना वंशत्र, हो प्रगति हर पथ हर सत्र ।
धन्य प्रभु पायो सुशांत्र, जलाए प्रकाश दीप हर आंत्र ।।(९)
नमन करते हम सब जंत्र, प्रभु हों हिय हमरे पवित्र ।
जीवन है एक युद्ध वंशत्र, हेतु विजय अनिवार्य प्रपत्र ।। (१०)

श्री राम कथा संस्थान उद्देश्य

- श्री राम कथा संस्थान भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी महाराज (१४वीं शताब्दी) की शिक्षाओं पर आधारित एक सनातन वैष्णव धार्मिक संस्था है।
- श्री संस्थान का सिद्धांत धर्म, जाति, लिंग एवं नैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव रहित है। 'हरि को भजे सो हरि को होई' संस्थान का मूल मन्त्र है।
- श्री संस्थान का मानना है कि शुद्ध हृदय एवं निःस्वार्थ भाव भक्ति ईश्वर को अति प्रिय है। सभी प्रभु-भक्त एक दूसरे के भाई बहन हैं।
- ब्रह्म मनोभाव: भगवान् श्री राम, माता सीता एवं उनके विविध अवतार ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं। वह सर्व-व्याप्त एवं विश्व के सरंक्षक हैं।
- आत्मा मनोभाव: आत्मा का अस्तित्व सर्वोच्च ब्रह्म के परमानंद पर निर्भर है। आत्मा को सर्वोच्च ब्रह्म ही निर्देशित एवं प्रबुद्ध करते हैं। श्री राम, माता सीता एवं उनके अवतार ही जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष दिलाने में समर्थ हैं।
- माया मनोभाव: माया प्रकृति के तीन गुण - सत, रज और तमस, के प्रभाव से प्राकट्य होती है। माया को सर्वोच्च ब्रह्म ही नियंत्रित करने में समर्थ हैं। सर्वोच्च ब्रह्म पर ध्यान केंद्र करने से माया का विनाश होता है, और जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल मोक्ष की प्राप्ति होती है।
- श्री संस्थान इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निरंतर सनातन धार्मिक पत्रिकाएं, पुस्तकें, पुस्तिकाएं, काव्य ग्रन्थ आदि की रचनाएं एवं प्रकाशन करता है। साथ ही, समय समय पर श्री राम एवं अन्य धार्मिक कथाओं के संयोजन का भी प्रयास करता रहता है।

श्री राम कथा संस्थान
३५, मायना रिट्रीट, हिलरीज़, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
Web https://shriramkatha.org
Email: srkperth@outlook.com

लेखक: डॉ यतेंद्र शर्मा

एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रूचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान् दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया। उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़ ऑस्ट्रिया से रसायन तकनीकी में पी.अच्.डी की उपाधि विशिष्टता के साथ प्राप्त की। सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहें हैं, तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में कार्य रत हैं।

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्था 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की। यह संस्था श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं- १५वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, ऋषियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है।

श्री राम कथा संस्थान पर्थ
३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज़, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
Web https://shriramkatha.org
Email: srkperth@outlook.com